॥ श्रीहरिः ॥ 161

हृदयकी आदर्श विशालता

(प्रेरणाप्रद सत्य घटनाएँ)

गीताप्रेस GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥
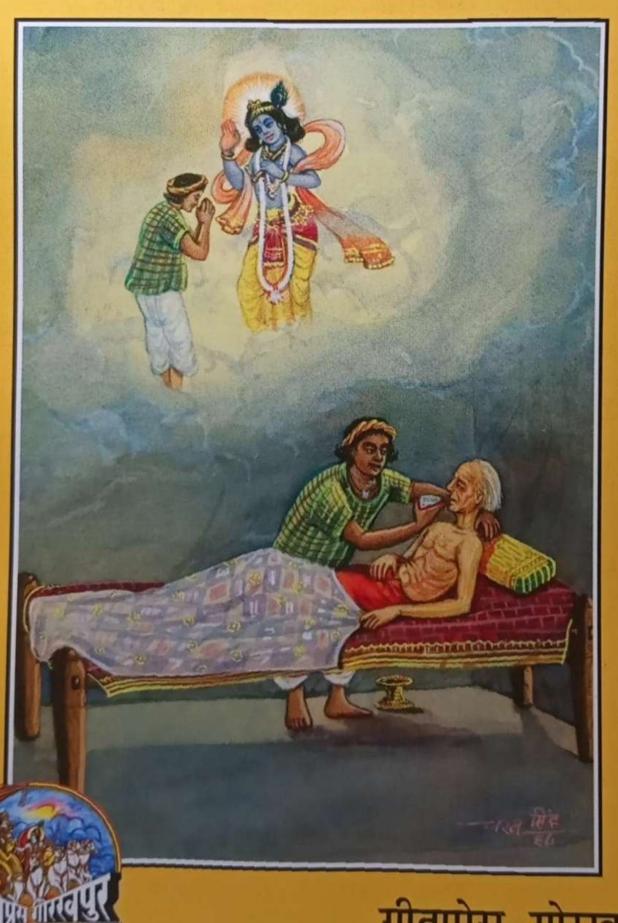
हृदयकी आदर्श विशालता

(पढ़ो, समझो और करो)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

कल्याणके 'पढ़ो, समझो और करो' शीर्षकमें प्रकाशित सामग्रीसे चरित्र-सुधार तथा चरित्रके उच्चस्तरपर आरूढ़ होनेमें बड़ी सहायता मिल रही है। इसी बातको ध्यानमें रखकर उन लोगोंका यह संग्रह 'हृदयकी आदर्श विशालता' शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित किया जा रहा है। मनुष्य-जीवनमें सबसे मूल्यवान् वस्तु है उसका सात्त्विक और उच्च चरित्र। आशा है कि इस पुस्तकके द्वारा भी सहृदय पाठक-पाठिकागण उच्च चरित्रके निर्माणमें प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

विषय पृष्ठ-संख्या

विषय **पृष्ठ-संख्या**

॥ श्रीहरिः ॥

हृदयकी आदर्श विशालता

[पढ़ो, समझो और करो]

दासप्रथाको लेकर अमेरिकामें गृहयुद्ध छिड़ा (१८६१—१८६५)। दासप्रथा-समर्थक सेनाके प्रधान सेनाध्यक्ष तम्बाकूवाले बर्जीनिया राज्यके जनरल ली थे। जनरल ली इस युद्धमें परास्त हुए और उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। सन्धिकी शर्तें तय करने और उनपर हस्ताक्षर करानेके लिये दासप्रथा-विरोधी दलकी ओरसे जनरल ग्राण्ट लीके पास गये। ग्राण्टकी दशा उस समय वैसी ही थी, जैसी भीष्म और द्रोणके सामने अर्जुनकी हुआ करती थी। गृहयुद्धसे पूर्व ग्राण्ट लीकी मातहतीमें काम कर चुके थे और लीने उन्हें सैन्य-संचालनमें बहुत कुछ शिक्षा-दीक्षा भी दी थी। गुरुतुल्य लीको पराजित और मानभंगकी अवस्थामें देखकर ग्राण्ट विह्वल हो गये। उन्होंने लिखा, 'I felt like anything rather than rejoicing at the downfall of a foe who had fought so long and valiantly' ऐसे शत्रुके गिर जानेपर, जो इतने दीर्घकालतक इतनी वीरतापूर्वक लड़ा हो, मुझे चाहे कुछ भी हुआ हो, परन्तु प्रसन्नता नहीं हुई।'

युद्धका नियम है कि पराजित शत्रुके अस्त्र-शस्त्र और वाहन छीन लिये जाते हैं; परन्तु लीके केवल एक बार कहनेपर ही ग्राण्टने अफसरोंके व्यक्तिगत हथियार एवं घोड़े उन्हींके पास रहने दिये। लीके यह बतलानेपर कि 'खाद्य-सामग्री समाप्त हो

जानेसे उसके २५,००० सैनिक भूखे हैं,' ग्राण्टने तुरन्त उसकी समुचित व्यवस्था करा दी। इसी समय युद्ध-मन्त्रीका सन्देश आया कि 'जनरल लीके आत्मसमर्पणकी खुशीमें तुरन्त १,००० तोपोंकी सलामी छोड़ी जाय।' ग्राण्टने लिखा कि 'ली-जैसे वीरको बार-बार यह स्मरण दिलाना कि तुम पराजित हो गये हो, शोभनीय नहीं है। विजयोत्सवके उपलक्षमें तोपें न छोड़ी जायँ, नहीं तो, लीसे अधिक मेरी आत्माको कष्ट पहुँचेगा।'

ग्राण्टकी प्रार्थना स्वीकृत हो गयी और तोपें नहीं छोड़ी गयीं।

ईश्वरप्रार्थनाका फल

भगवान्‌की प्रार्थनासे प्राण कैसे बचे, यह आपबीती घटना श्रीहरिस्वरूप वर्माके शब्दोंमें ही पढ़िये।

'अभी ६ ता० की (रातको) नौ बजे जानेवाली मेलगाड़ीसे मैं दिल्लीसे बरेली चौदहवींका फार्म भरने जा रहा था। भीड़ होनेकी वजहसे दरवाजेके पास खड़ा हो गया। वहाँ एक और आदमी खड़ा था और उसका एक साथी लेटा हुआ था वहीं। मैंने उसके पूछनेपर बता दिया कि मुझे बरेली जाना है। मुरादाबाद स्टेशनके बाद दरवाजेपर खड़े हुए आदमीने एक जहरीला सिगरेटका धुआँ फेंका। मेरे सिरमें दर्द होने लगा। फिर मुझे पता नहीं क्या हुआ, आगे रामपुर स्टेशनपर उन्होंने मुझे उतार लिया। मुझे बेहोशीकी हालतमें रिक्शेमें बैठाकर वे शहरसे तीन मील दूर ले गये। रिक्शेवालेको पैसा देकर वापस भेज दिया। उस समय मुझे कुछ होश आ गया था। मैंने उनसे पूछा—'तुम कौन हो? मुझे किसलिये यहाँ लाये हो?' उन्होंने कहा—'तुम्हारी तबीयत खराब है। हम अपने घर ले जा रहे हैं।' मैंने मना किया। वे जबरदस्ती मुझे सड़कसे मिले हुए खेतमें ले आये। एकने मेरा गला पकड़ लिया और चाकू गलेपर रखकर कहा—'निकालो क्या है तुम्हारे पास।' मैंने पर्स निकालकर दिया। उसमें केवल बीस रुपये थे। उन्होंने पैण्टकी जेबें देखीं; उनमें कुछ और रुपये थे। एक नयी १५० रुपयेकी घड़ी थी। सब लेकर कमीज-पैण्ट उतरवाकर वे चलने लगे। फिर एकने कहा—'इसने रिक्शेवालेको पहचान लिया है—कोई गड़बड़ न हो जाय, इसलिये खत्म कर दो।' मैंने

उनसे कहा—'तुमको सामान लेना है, ले लो।' लेकिन वे नहीं माने। मैंने भागने आदिकी कोशिश की लेकिन सब व्यर्थ! उन्होंने मेरा एक टाँगसे हाथ बाँध दिया और मारनेकी तैयारी कर दी। उनमेंसे एक गर्दनमें चाकू मारनेहीवाला था। मैंने अपना अन्तिम समय समझकर उनसे प्रार्थना की कि 'मुझे एक मिनट अपने भगवान्का नाम तो ले लेने दो।' आर्तस्वरसे प्रार्थना की अपने सरकारसे। इतनेमें ही एक मोटर-ट्रकके आनेकी आवाज सुनायी दी। सड़कपर ट्रक जा रही थी। मैंने 'रोकना जरा' ऐसी आवाज मारी। ट्रक मेरे प्रभुकी प्रेरणासे वहीं रुक गयी। वह आदमी जो चाकूवाला था, एकदम भाग गया और दूसरा सामानपर झपटा और हाथमें कुछ सामान लेकर भागा। घड़ी और पर्स गिर गये उसके हाथसे। बाकी रुपया तथा खेरीज लेकर वह भाग गया। मैं ट्रकमें बैठकर स्टेशन आ गया।

इस काण्डके होनेमें लगभग आध-पौन घंटा लगा। तबतक कोई ट्रक वगैरह नहीं आयी। वह तो प्रभुसे जब प्रार्थना की तभी आयी। दूसरे, ट्रक इतनी तेजीसे चलती है कि वह कोई आवाज सहजमें सुन ही नहीं सकती। यह तो सब प्रभुकी ही लीला है। प्रभु ही अपने जनोंकी सदा-सर्वदा रक्षा करते रहते हैं। प्रभुने प्राणदान दिया तथा सब सामान अटैचीसहित, जिसमें उस नवयुवकके कागजात वगैरह बड़े कामकी चीजें थीं सब बच गयीं। थोड़े-से रुपये खेरीज ही वे ले गये।

—वृजनाथशरण अरोड़ा

भगवन्नामका अमोघ परिणाम

कुछ वर्ष पूर्वकी बात है। मेरे मकानके सामने एक पंजाबी सज्जन रहते थे। रातको दो बजे मुझे बुलाने आये, बोले—'मेरा दौहित्र बीमार है और उसकी हालत बहुत खराब है।' मैं तुरंत गया। लड़का छः-सात सालका था। स्थिति शोचनीय थी। मैं भी हताश हो गया। क्या किया जाय, कुछ समझमें नहीं आया। इतनेमें ही धन्वन्तरिभगवान्‌के ये वचन याद आ गये—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

मैंने घरके सब लोगोंको हटा दिया और लड़केका हाथ अपने हाथमें लेकर 'अच्युत, अनन्त, गोविन्द'—इन भगवन्नाम-मन्त्रोंका मन-ही-मन जप करने लगा। एक घण्टेभर जप चला था कि लड़का उठ बैठा और हँसने लगा। सब लोग आ गये। मैंने कहा—'भगवान्‌की कृपासे लड़का अच्छा हो गया।' वह लड़का अब भी जीवित है और सकुशल है।

इस मन्त्र—'अच्युत, अनन्त, गोविन्द' को सिद्ध कर लेना चाहिये। सिद्ध करनेकी विधि यह है—आश्विन मासमें धनत्रयोदशीके दिन स्नानादिसे पवित्र होकर आसनपर बैठ जाय और शुद्ध घीका दीपक जलाकर उपर्युक्त मन्त्रका १,२८,००० (एक लाख अट्ठाईस हजार) जप पूरा कर ले। एक दिनमें न हो तो दूसरे दिन दूध पीकर कर ले। जप पूरा होनेपर इसी मन्त्रसे कुछ होम करे और यथाशक्ति एक या अधिक पवित्र ब्राह्मण या सन्तोंको भोजन करा दे। बस, मन्त्र सिद्ध हो गया। इस मन्त्रका प्रयोग कभी पैसेके लिये न करे।

—एक वृन्दावनवासी बाबा

ग्रामीण चमारिनकी ईमानदारी

कुछ वर्ष पूर्व चखनी (बगहाके पास)-के पादरी साहब बेतिया बैंकसे २८,००० रुपयेका भुगतान लेकर मोटरसाइकिलसे लौरिया पिरोडसे जा रहे थे। भूलसे उनका मनीबैग शनीचरी चौकसे कुछ दक्षिण ही गिर पड़ा, जो तत्काल उन्हें मालूम भी न हो सका। बहुअरआ ग्रामकी एक बुढ़िया चमारिनने उसे पाया और वह अपने घर ले गयी। वहाँ उसने खोलकर देखा तो उसमें नोट-ही-नोट भरे थे। बुढ़ियाने पादरी साहबको जाते देखा था, अतः वह समझ गयी कि यह उन्हींका है। वह तुरन्त ही फिर सड़ककी ओर इस अभिप्रायसे लौट आयी कि वे लौटें तो उनसे यह बात कह दूँ।

किंतु कुछ दूर आगे जानेपर जब पादरी साहबको बैग गिर जानेका ध्यान आया, तब वे शीघ्र ही वापस लौटे तथा बुढ़ियाके फिर सड़कपर आनेसे पहले ही वे बेतियाकी ओर चले गये। वहाँ (बेतिया) थानेमें इसकी इत्तिला दी और लौरिया थानेमें भी फोन करवाया। यह सब करके वे फिर वापस लौटे, तबतक बुढ़िया उनकी प्रतीक्षामें सड़कपर बैठी रही। उन्हें आते देख उसने रोका और सब हाल कह सुनाया। पादरी साहब उसके साथ उसके घरतक गये। बुढ़ियाने उनका बैग उन्हें सौंप दिया। उन्होंने देखा तो सब रुपये ठीक थे। पादरी साहब तीन हजार रुपये उसे देना चाहते हैं, जिसकी जमीन ठीक होनेपर उस बुढ़ियाके नातीके नामसे खरीदी जायगी; क्योंकि उसका कोई दूसरा वारिस नहीं है। सुना है—उसके घर (झोपड़ी)-की

मरम्मत उनके द्वारा करायी गयी है।

इस घोर कलिकालमें भी कुछ ऐसी शुचिता-सम्पन्न (ईमानदार) आत्माएँ विद्यमान हैं, जो कठोर प्रलोभनकी स्थितिमें भी अपने मानवीय कर्तव्योंको कदापि नहीं भुला पातीं; यद्यपि आधुनिक शिक्षित सभ्य-नामधारी समाजमें उन्हें अशिक्षित तथा असभ्य ही समझा जाता है। भगवान् करें कि वह कुशिक्षा ही यहाँसे सर्वथा दूर हो, जो आत्मा-जैसी अमूल्य निधिको लुटाकर नश्वर क्षणिक सुख-विलासोंकी ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा देती है। किसी कविने ठीक ही लिखा है—

जन्मैव वन्ध्यतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया॥

—नन्दकिशोर झा

सेठकी सुहृदता

कुछ वर्षों पहलेकी बात है। राजस्थानके एक कस्बेमें एक सेठके पास एक अपरिचित सज्जन बहुत आवश्यक होनेपर बहुत अधिक कीमतकी हँसली रखकर सात सौ रुपये उधार लेने आये। सेठने उनके प्रति सहानुभूति करके कहा—'सात सौ रुपये ले जाइये, हँसलीकी कोई आवश्यकता नहीं है।' पर वे नहीं माने। तब हँसली रखकर उन्हें सात सौ रुपये दे दिये गये। सेठने हँसली अपनी पुत्रवधूके पास रखवा दी। हँसलीके साथ ही उन सज्जनका नाम-पता लिखा था।

इसके बाद काफी समय बीत गया। वे सज्जन रुपये देकर हँसली छुड़ाने नहीं आये। इधर सेठ बीमार रहने लगे। उनके एक अंगपर लकवा मार गया। अब सेठ बड़ी चिन्तामें पड़े और सोचने लगे कि उक्त सज्जनके पास सात सौ रुपयेकी व्यवस्था नहीं हो सकी होगी, इससे वे हँसली लेने नहीं आये। हँसली ज्यादा कीमतकी है। वे बेचारे हँसलीसे वंचित हो जायँगे तो उनका बड़ा नुकसान होगा। सेठको उन सज्जनका नाम-पता तो याद रहा नहीं, पर वे बार-बार उनकी याद करके बड़ा दुःख प्रकट करते। एक दिन पुत्रवधूने उनकी बात सुनकर कहा कि 'उनका नाम-पता तो हँसलीके साथ ही मेरे पास लिखा है।' यह जानकर सेठको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे लकवाकी बीमारीकी हालतमें ही मोटरपर सवार होकर हँसली लेकर उक्त सज्जनके गाँव पहुँचे। उन्होंने वहाँ जाकर उनसे कहा—'आप अपनी हँसली ले लीजिये, रुपयेकी व्यवस्था नहीं हो सकी तो कोई संकोचकी

बात नहीं है।' वे बेचारे तो यह देख-सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने हँसली लेनेसे इनकार किया। पर सेठ माने नहीं, उन्हें हँसली देकर ही आये और इससे उन्हें बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। वे सज्जन तो गद्‌गद हो गये।

—एक जानकार

कुछ अनुभूत अमोघ दवाएँ

१. आधाशीशी—रात्रिको सोनेसे पूर्व एक छटाँक चीनी या चीनीका बूरा पावभर पानीमें घोलकर ढककर रख दें। ऐसा ढके जिसमें चींटी आदि न लग जायँ। प्रातःकाल सूर्य-उदयसे एक घंटा पहले जलको अच्छी तरह हिलाकर पी जाय। बस, आधाशीशी गयी। यह अनुभूत है।

२. तिजारी (एकान्तरा) ज्वर—आनेके दिन दो घंटे पहले, रोगीको थोड़ा-सा गुड़ लेकर अपने पास बुला ले; फिर थोड़ी-सी भुनी हुई फिटकरी गुड़में मिलाकर भगवान्के नामका उच्चारण करते हुए उसकी गोली बनाकर रोगीको खिला दे। ऊपरसे थोड़ा-सा जल पिला दे। इससे एकान्तरा नष्ट हो जाता है।

३. उदर-रोग—प्रतिदिन प्रातःकाल गाय (काली गौ हो तो सर्वोत्तम)-का पहली दफेका मूत्र मिट्टी, काँच या चीनी माटीके बरतनमें लेकर उसमेंसे छानकर केवल एक छटाँक गोमूत्र पी ले। चालीस दिनोंतक नियमित पीना चाहिये। इससे पेटके सारे रोग दूर होते हैं।

४. (क) उदर-शूल—कच्ची फिटकरी दो माशा एक तोला शुद्ध शहदमें बारीक पीसकर उसे चटा दे। १५ मिनटमें आराम हो जाता है।

(ख) नाभिके नीचेका शूल (वृक्कशूल)—एक मुनक्का लेकर उसमेंसे बीज निकाल दे और बीजकी जगह एलुवा रखकर उसे रोगीको निगलवा दे। ऊपरसे थोड़ा-सा जल पिला दे। पाँच ही मिनटमें आराम होता है।

—श्रीराधेश्यामं मौनीबाबा वंशीवाला, वंशीवट, वृन्दावन

नायलोनका बुरा फल

हमारे एक सम्बन्धीकी बहिन अंकलेश्वरमें जल गयी थी। तार मिलते ही मैं वहाँ गयी। नायलोनकी साड़ी पहिने रसोई बना रही थी, स्टोव जमीनपर था। किसी चीजको लेने गयी थी कि साड़ीके एक छोरको आगने पकड़ लिया। फिर तो नायलोन जलकर सारे शरीरमें चिपक गया। जलनेके बाद पुकार मचाती बहिन बाहर दौड़ आयी, तबतक तो नायलोनकी साड़ी शरीरसे ऐसी चिपक गयी कि अस्पतालमें जब उसका पोस्टमार्टम किया गया तो चिमटीसे खींच-खींचकर नायलोनके टुकड़े शरीरसे निकाले गये। यह दृश्य इतना करुण था कि मेरी तो आँखें तिरमिरा गयीं। नायलोन जितना सुन्दर तथा सुविधा-भरा है, उतना ही हानिकारक और प्राणहारी है।

दूसरा प्रसंग यह है कि मेरे गलेमें दर्द होनेके कारण मैं एक दिन बम्बई अस्पतालमें गयी थी। वहाँ एक बहिनको देखा, जिसकी छाती और हाथ बुरी तरह जले हुए थे। गरदनके ऊपरकी चमड़ी और गाल भी जले थे। गरदनकी नसें जलकर छोटी हो गयी थीं। पूरा मुँह नहीं खुल पाता था। पूछनेपर पता लगा कि वह बहिन नायलोनकी चोली पहिनकर बाहर जा रही थी। इतनेमें दूधवाला आ गया। दूध गरम करनेको रखा। उतारते समय सँड़सीके बदले बहिन साड़ीसे ही तपेली उतारने लगी। इसीमें एक छोर जल उठा और बहुत प्रयत्न करनेपर भी नायलोनकी चोली शरीरसे उतरी नहीं। शरीरसे नायलोन चिपका था, इसीसे वह इतनी जल गयी थी। सुन्दर नायलोनके पीछे कितनी विपत्ति भरी है। एक बहिन नायलोनके मोजे सदा पहने रहती, इससे उसको चर्मरोग हो गया।

—देवल सरैया

व्यापारमें उदारता

कुछ वर्षों पहलेकी बात है। जयपुर महाराजके महलको सजानेके लिये बम्बईकी दो प्रसिद्ध फर्मोंको फर्नीचर लगानेका आर्डर दिया गया। दोनों ही फर्में फर्नीचर बनानेमें निपुण तथा एक-दूसरेसे बढ़ी-चढ़ी थीं। संयोगवश फर्नीचरको पालिश करने तथा फिटिंग करनेके लिये दोनों ही फर्मोंके कारीगर एक ही साथ जयपुर पहुँच गये और अपने-अपने जिम्मेके अलग-अलग कमरोंके सजानेका काम जोरोंसे चलाने लगे। प्रतिद्वन्द्वीकी तरह दोनों फर्मोंके कारीगर एक-दूसरेके कामकी शिकायत महलके मास्टरसे करते और मास्टरके द्वारा बात महाराजतक पहुँच जाती।

एक दिन सबेरे स्वयं महाराजा फर्नीचर देखने आये। उस समय एक फर्मके मालिक भी आये हुए थे। उन्होंने अपने मालकी बड़ी प्रशंसा करते हुए दूसरी फर्मके लिये कहा कि 'उसने लकड़ी बहुत हलके दर्जेकी बरती है।' यों महाराजके कानमें जहर भर दिया। महाराजने उस फर्मको पत्र लिखा कि वह अपना फर्नीचर वापस ले जाय और एडवांसमें दिये हुए रुपये लौटा दे। पत्र पढ़कर उक्त फर्मके मालिक बहुत दुःखी हुए। उसी रात्रिको वे जयपुरके लिये चल निकले। व्यापारमें जीवनभर कभी धोखा न करनेपर भी यह लांछन लग गया; इसके लिये वे ईश्वरसे माँफी माँगने लगे।

स्टेशनसे वे सीधे ही महलमें पहुँचकर महाराजासे मिले। वहाँ प्रतिद्वन्द्वी फर्मके मालिकको उपस्थित देखकर उन्होंने परिस्थितिका सारा रहस्य समझ लिया। उनकी उपस्थितिमें ही उन्होंने

महाराजाको एडवांसका चेक वापस देते हुए कहा—'सरकार! आपने आर्डर रद्द कर दिया, इसका हमें कोई खास विचार नहीं है, परंतु यह तो हमारी इज्जतका सवाल है। प्रत्येक फर्नीचरमें हमने शर्तके मुताबिक सागवानकी लकड़ीको ही काममें लिया है। इसकी तसल्लीके लिये मैं मशीन साथ लाया हूँ, आप अपने शहरके किसी अच्छे जानकारको बुलाकर जाँच करा लें। वे जाँच करके आपको निश्चित बात बता सकेंगे।'

इसी बीच प्रतिद्वन्द्वी फर्मके मालिक धीरेसे खिसक गये। महाराजाने शहरके पारखीको बुलाकर जाँच करवायी, तब निश्चय हो गया कि लकड़ी ठीक सागवानकी लगी है और काम भी बहुत अच्छा किया गया है।

महाराजाने आर्डर रद्द करनेका आदेश वापस ले लिया और उस फर्मके मालिकका आभार मानते हुए काम चालू रखनेको कहा। इसीके साथ महाराजाने दूसरी फर्मका फर्नीचर कैसा है; यह जाननेके लिये उनसे पूछा। उन्होंने कहा—'सरकार! हम अपना माल कैसा है, केवल यही बता सकते हैं। दूसरेकी चीजके विषयमें सम्मति देकर उसे नीचा या हलका बतलाना हमारे सिद्धान्तमें नहीं है।' दोनोंका काम पूरा हुआ और रकम चुका दी गयी। इनमें इस फर्मका काम सहज ही सबको बहुत सुन्दर लगता था।

बहुत दिनों बाद महाराजाके एक मित्र धनी मारवाड़ी सेठ महाराजासे मिलने आये और महलके सुन्दर फर्नीचरको देखकर अपने बँगलेके लिये वैसा ही फर्नीचर बनानेके लिये उन्होंने फर्नीचरवाले फर्मका नाम-पता लेकर उसको पत्र लिखा। महाराजाने

जिसकी शिकायत की गयी थी, पर जिसका काम सच्चा और बढ़िया हुआ था उसी फर्मका नाम-पता बतलाया था। मारवाड़ी सेठने उनको लिखा कि 'वे उक्त फर्मको एक लाखका कार्य देंगे, वे तुरंत ही बँगला देखने जयपुर आ जायँ।' चौथे दिन उस फर्मका उत्तर मिला—लिखा था—'आपने महाराजा साहेबके कथनानुसार हमलोगोंको आर्डर देनेके लिये बुलाया, इसके लिये हम आभारी हैं। पर इस समय हमारे हाथमें बहुत अधिक काम होनेके कारण हम आर्डर स्वीकार नहीं कर सकेंगे, इसके लिये क्षमा करें। हम आपसे सिफारिश करते हैं कि आप अपना काम नीचे लिखी फर्मको दे दें; वह बहुत अच्छा फर्नीचर बहुत सावधानीसे बना देगी।' यों लिखकर नीचे उसी प्रतिद्वन्द्वी (महाराजाको झूठी शिकायत करनेवाले) फर्मका नाम-पता लिख दिया।

मारवाड़ी सेठने उस दूसरी फर्मको लिखा कि—बम्बईकी अमुक फर्मने बढ़िया फर्नीचर बनानेके लिये आपका नाम बतलाया है। अतः आप आकर बँगला देख लें और आर्डर ले जायँ।' जिस फर्मकी स्वयं शिकायत की थी, उसीने अच्छा काम करनेके लिये हमारा नाम बतलाया है, यह जानकर उस फर्मके मालिक बहुत ही शर्मिन्दा हो गये और जयपुरसे अच्छी-सी रकमका आर्डर लेकर जब वापस बम्बई लौटे तो सीधे उस फर्मकी दूकानपर जाकर उन्होंने झूठी शिकायत करनेके लिये गद्गद कण्ठसे उनसे माफी माँगी और भविष्यमें कभी ऐसा न करनेका वचन दिया।

आज भी वे दोनों फर्में प्रेमसे हिल-मिलकर काम करती हुई बम्बईमें नामके साथ दाम भी कमा रही हैं।

—शान्तिलाल बोले

बच्चेसे सहानुभूति

यह सच्ची घटना दिनांक ४। ६। ६४ अपराह्न दो बजेकी है। मेरा लगभग ११ वर्षका बच्चा, जिसका नाम व्रजेशकुमार 'राजू' है, मुझसे बाटाकी चप्पल लेनेके लिये आग्रह करने लगा। कठिन धूप होनेके कारण मैंने उसे समझा-बुझाकर मना किया। पर उसके हठ करनेपर मैं स्वयं न जाकर उसे पाँच-पाँचके दो नोट देकर साइकिलसे भेज दिया। अभी वह साइकिल सीटपरसे नहीं चला पाता है। कैंची साइकिल चलाकर चौकपर स्थित बाटाकी दुकानपर जो घण्टाघरके पास है, गया। साइकिलमें ताला लगाकर वह अन्दर चप्पल लेने गया और चप्पल पसन्द होनेपर उसका बिल पेमेण्ट करनेके लिये अपनी जेबसे रुपया निकाला, भीड़ होनेसे बालक रुपया कैशियरको देनेकी कोशिशमें था कि उसके हाथसे दोनों नोट किसीने सफाईसे निकाल लिये। बालक तुरन्त रोने लगा। उसकी बातपर किसीने विश्वास नहीं किया, बल्कि उलटे कुछ लोग उसीको धूर्त बताने लगे। बच्चा तो था ही, वह अधिक घबरा गया। उन्हीं व्यक्तियोंमें एक उदारहृदय सज्जन भी बैठे थे, उनकी कार बाहर खड़ी थी। उनकी धर्मपत्नी तथा बच्चे भी साथ थे। उन्होंने यह सब घटना देखी और इसपर विचार किया। इसके बाद उन्होंने बच्चेको बुलाया, अपने झोलेसे एक लड्डू देकर पानी पिलाया और दस रुपयेका नोट देकर उसके चप्पलका पेमेण्ट कर दिया। चप्पलका मूल्य ५.५० था, सेलटेक्स आदिके कुछ और पैसे हुए थे। कैशियरने उन पैसोंको काटकर शेष रुपये उक्त सज्जनको लौटा

दिये और उन्होंने वे पैसे मेरे बच्चेको दे दिये। इसके बाद वे अपनी कारके ऊपर उसकी साइकिल रखकर मेरे घरके ही सन्निकटके चौराहेतक बच्चेको छोड़ गये। घर आकर बच्चा सारी घटना सुनाकर फूट-फूटकर रोने लगा और बच्चेने उक्त सज्जनकी उदारता बतायी तथा उनकी कारका नम्बर जो उसको याद था, ५५७७ यू० सी० एन० बताया। बालकके तथा बाटावालोंके पूछनेपर भी उस विशाल हृदयके व्यक्तिने अपना पता नहीं बताया। केवल इतना ही कहा कि 'मैं दिल्लीका हूँ।' इस घटनासे मैं तथा मेरा सारा परिवार जितना रुपये गुम होनेके गमसे दुःखी नहीं हुए, उतना उस उदारहृदय सज्जनके विषयमें सोच-सोचकर आत्मविभोर हो गये। उन उदारहृदय सज्जनके प्रति हमारे कृतज्ञतापूर्ण अभिवादन।

—राजकुमार पाण्डेय

सब व्यवस्था करनेवाली भागवती शक्ति

यह घटना सन् १९५६ की है। मैं अपनी मोटर-साइकिलपर बैठकर एक आवश्यकीय कार्यके लिये एल० एच० शुगर फैक्टरी काशीपुरको चला, जो कि नगरसे दक्षिण-पूर्वकी ओर है। जब मेरी मोटर-साइकिल चौराहेपर पहुँची तो किसी अज्ञात शक्तिने उसको उत्तरकी ओर मोड़ दिया और कहा कि श्रीगरजिया देवीके मन्दिर चलो। मेरी समझमें नहीं आया और मैं उस अन्त:प्रेरणासे प्रभावित हो उसी ओर चल दिया। वह मन्दिर रामनगर मण्डीसे लगभग नौ मील, काशीपुरसे छब्बीस मीलपर कोशी नदीके बीचमें एक बहुत ऊँची चट्टानपर है। इस चट्टानका घेरा लगभग दो-ढाई सौ फुट होगा। बड़ी-बड़ी बाढ़ें आयीं, सिमेंटके बनवाये हुए सरकारी बन्धे बह गये, मगर यह पतली चट्टान तीन-चार सौ फुट ऊँची वैसी ही बनी रही। यहाँ श्रीगरजिया देवीका मन्दिर है और मैं सन् १९३० में जब पहली बार जेल गया, तभीसे अपने स्वर्गीय पूज्य पिताजीकी आज्ञासे शक्तिका उपासक बना। मैंने चढ़ानेके लिये रामनगरसे प्रसाद खरीदा और श्रीगरजिया देवीपर प्रसाद चढ़ाकर वापस लौटा तो अपनी आदतके अनुसार मैं मोटर-साइकिल रोककर पहाड़ी बच्चों, स्त्रियों तथा पुरुषोंको प्रसाद बाँटने लगा। यहाँ जंगल-ही-जंगल है। एक जगह मुझे कराहनेकी आवाज सुनायी दी। मैं अन्दर जंगलमें घुसा तो क्या देखता हूँ, एक नैपाली डुटियाल पड़ा कराह रहा है। मैंने उसे प्रसाद दिया और पूछा—क्या बात है, तो उसने बताया कि मैं दो दिनोंसे यहाँ पड़ा हूँ। मेरे पैरमें

लकड़ी काटते कुल्हाड़ी लग गयी। मैंने उसपर अपनी कमीज बाँध दी। रातको शेर दहाड़ता रहा और मैं भगवतीका नाम लेता रहा। मैंने उसे प्रसाद खिला दिया और किसी प्रकार उसको रामनगर रानीखेत सड़कपर लाया। उस समय शाम हो गयी। कोई सवारी नहीं और मोटर-साइकिलपर आना मुश्किल था। मैं वहीं खड़ा रहा, अँधेरा होनेपर एक ट्रक आती दिखायी दी। मैंने बीच सड़कमें मोटर-साइकिल खड़ी कर दी। ट्रक रुकी, उससे उस घायलको ले जानेकी प्रार्थना की। पैसा देनेपर वह तैयार हो गया। रामनगरके अस्पतालमें उसको भर्ती कराया। सब प्रबन्ध करके जब वापस आया, तो सोचा कि आगे-से-आगे मुझे सचमुच वही सब विधान और व्यवस्था करनेवाली भागवती शक्ति ही वहाँ ले गयी, जिसको उस घायल पहाड़ीके प्राण बचाने थे।

—डॉ० रामशरण सारस्वत, काशीपुर

पेडेरेवस्कीकी आदर्श उदारता

अमेरिकन राष्ट्रपति हरबर्ट क्लार्क हूवर (१८७४) एक लोहारके पुत्र थे। इनकी आयु केवल छः वर्षकी थी कि पिताका देहान्त हो गया। विधवा माता कपड़े सी-सीकर अपना और अपने बच्चोंका पेट पालती थी। कुछ दिनोंके बाद वह भी मर गयी। तब हूवरका पालन-पोषण इनके एक चाचाने किया। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इनका विद्यार्थी-जीवन बड़ी दरिद्रावस्थामें कटा। जब ये कैलीफोर्नियाके विश्वविद्यालयमें पढ़ते थे, तो समाचारपत्र बेच-बेचकर अपनी पढ़ाईका खर्च चलाते थे। इन्हीं दिनों पोलैंडके विश्वविख्यात संगीतज्ञ पेडेरेवस्की (Paderewski) अपनी मण्डलीके साथ कैलीफोर्निया पधारे। हूवरको पैसा कमानेकी अच्छी तरकीब सूझी। उन्होंने पेडेरेवस्कीसे २००० डालरमें ठेका कर लिया कि आपको अपने प्रदर्शनका शुल्क २००० डालर मिलेगा और जो खर्च होगा तथा जो टिकिटोंकी ब्रिकी होगी, वह सब हमारी। संगीतज्ञ तैयार हो गये; परन्तु दुर्भाग्यसे टिकिट बहुत कम बिके। २००० डालरका शुल्क कैसे दिया जाय, यही एक समस्या बन गयी, लाभ तो कहाँसे हो। कोई और उपाय न जान हूवरने सारी स्थिति पेडेरेवस्कीके सामने रखी और उनकी उदारता तथा क्षमाशीलताके लिये अपील की। उदारहृदय पेडेरेवस्कीने उत्तर दिया, 'लड़के! मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। भविष्यमें फिर कभी ऐसी भूल न करना। टिकिटोंकी जो आय हुई हो, उससे हालका किराया बिजली इत्यादिके बिल चुकाओ और जो कुछ बचे, वह हमें दे दो। हम

उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेंगे।

हूवरने ऐसा ही किया। जाते हुए पेडेरेवस्कीने हूवरको अपने पास बुलाया और उनके हाथपर कुछ डालर रखे। हूवरने आश्चर्य-चकित होकर पूछा, 'यह क्या?' पेडेरेवस्कीने हूवरकी पीठ थपथपाते हुए कहा—'तुमने टिकट बेचनेमें कठोर परिश्रम किया है लाभकी आशासे। मैं चाहता हूँ कि मेरे नामपर कोई व्यक्ति निराश न जाय। तुम बच्चे हो। बच्चोंसे भूल हो ही जाती है।'

हूवरने डालर ले लिये और उनका हृदय कृतज्ञतासे भर गया। बादमें इन्हीं हूवरने खानोंके उद्योगमें करोड़ों रुपये कमाया। प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४—१८)-की समाप्तिपर यूरोपकी आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाने १० करोड़ डालर यूरोपवासियोंकी सहायताके लिये भेजे। इस सारी रकमको बाँटनेके पूर्ण अधिकार हूवरको दिये गये और उस समय हूवर पेडेरेवस्कीके पोलैंडको नहीं भूले।

यह पेडेरेवस्कीकी उदारताका ही फल था कि हूवर ऋण-ग्रस्तोंसे कभी कठोर व्यवहार नहीं करते थे। जब वे राष्ट्रपतिके पदपर काम कर रहे थे तो १९३० की भयानक मन्दी आयी। यूरोपियन राष्ट्रोंने अमेरिकी ऋण चुकानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की और हूवरने उनसे अत्यन्त उदारतापूर्वक व्यवहार किया।

—राजेन्द्रप्रसाद जैन, तिस्सा

भगवत्कृपासे प्राप्त हैजेकी साधारण परन्तु रामबाण दवा

घटना १९४७ ई० की है। मेरे छोटे भाई श्री एस० आर० मिश्र आगरेमें थे। वहाँसे उन्होंने लिखा कि श्रावणमासमें मथुरा-वृन्दावनमें बड़ा आनन्द रहता है। इसलिये यदि तुम अमुक तारीखको वहाँसे चलकर आगरे आ जाओ तो वहाँसे एक अनुभवी व्यक्तिको लेकर भ्रमण किया जाय। मैंने स्वीकृति-पत्र भेज दिया। उस समय मैं पलिया (नसीराबाद)-में रहता था। घर और बच्चोंकी देख-रेखका भार अपने बाबा श्रीपुत्तूलालजीको निवासस्थान हरिपुरसे बुलवाकर सौंप दिया और मैं नियत कार्यक्रमके अनुसार सिधौली स्टेशनपर पहुँचा। यहाँ आनेपर पता चला कि मेरे छोटे चाचा श्रीअवधेशप्रसादको घरपर हैजा हो गया है, इसलिये घरसे बाबाको बुलानेके लिये एक आदमी नसीराबाद भेजा गया है। अब मैं बड़े असमंजसमें पड़ा। इसी परेशानीमें मैं अपने दूसरे चाचा श्रीमुकताप्रसादजीसे सलाह लेनेके लिये शामकी ही गाड़ीसे कमलापुर गया। उनको सारी परिस्थिति बतला दी और उनसे मैंने उचित सलाह माँगी। उन्होंने भी कहा कि इस तरह तुम्हारा बाहर जाना ठीक नहीं है; परन्तु मेरी मथुरा-वृन्दावन जानेकी उत्कट अभिलाषाको देखकर वे बोले कि 'देखो, एक बड़े अच्छे महात्माजी फरदहनसे आये हुए हैं। उनसे भी बात कर ली जाय।' हमलोग उनके पास पहुँचे और सारा हाल उनसे बताया। वे कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले कि 'अगर इसी समय रातमें ही कोई आदमी हरिपुर जाय और मेरी

बतायी हुई ओषधि सेवन करावे तो रोगी अवश्य स्वस्थ हो जायगा।' अब रातोंरात पाँच मील गाँवको जाना, वह भी जहाँ हैजेका प्रकोप हो, बड़ी कठिन समस्या थी। मगर मथुरा-वृन्दावन जानेकी मेरी ऐसी प्रबल इच्छा थी कि मैं आगमें भी कूदनेके लिये तैयार था।

अतः करीब आठ बजे रातको साइकिलद्वारा मैं कमलापुरसे हरिपुरके लिये रवाना हुआ। मेरे साथ चाचाजीने अपने लड़के चन्द्रशेखरको भी कर दिया था। इस तरह नौ बजे रातको हम गाँव पहुँचे। वहाँ कोहराम मचा हुआ था। चाचाजी जमीनपर पड़े पीड़ासे कराह रहे थे। बाबाजी भी वापस आ चुके थे। मैंने पहुँचते ही सबको ढाढस बँधाया और महात्माजीकी बतायी हुई दवाका प्रयोग किया। पहली खुराक दी गयी, पंद्रह मिनटके बाद दूसरी खुराक देते ही कुछ पेशाब उतरा, आधे घंटेके बाद तीसरी खुराक देनेपर खुलकर पेशाब उतरा, दर्द कम पड़ा और वे सो गये।

सबेरे उनकी हालत करीब-करीब ठीक हो गयी। तब बाबाजीसे मैंने अपने प्रोग्रामके बारेमें पूछा, उन्होंने गद्‌गद कण्ठसे कहा कि 'बेटा! यह सारा कौतुक उन्हीं गोपीजन-वल्लभके प्रभाव तथा महात्माजीके आशीर्वादसे ही तो हुआ है, नहीं तो ऐसे मरणासन्न रोगीको कौन बचानेवाला था। अब तुम निर्भय होकर अवश्य प्रस्थान करो, मैं भी आज ही शामतक नसीराबाद अवश्य पहुँच जाऊँगा।'

निदान, मैं सिधौली आकर साथ जानेवाले बच्चोंको लेकर प्रोग्राममें कुछ विलम्ब हो जानेके कारण बसद्वारा ही लखनऊ होता हुआ कानपुर पहुँचा। वहाँपर ट्रेन पकड़कर निश्चित

समयपर ही आगरा पहुँच गया। वहाँ भैया स्टेशनपर ही मिले। घर जाकर आद्योपान्त हाल बताया। सबने भगवान् श्रीकृष्णकी कृपाका प्रत्यक्ष प्रभाव बताया। फिर आनन्दपूर्वक मथुरा-वृन्दावनकी यात्रा सम्पन्न हुई और करीब पंद्रह दिनोंके बाद मैं कुशलपूर्वक वापस आ गया।

पाठकोंकी जानकारीके हेतु महात्माजीका बताया हुआ दवाका नुस्खा लिखता हूँ ताकि जनसाधारणतक महात्माजीकी कृपासे लाभ उठावें। मगर इसमें कोई भी पैसा कमानेके प्रयत्न करनेका साहस कदापि न करें।

१—खस (सींक अथवा ताजी जड़) = ३ माशा
२—तुलसीदल (ताजी पत्ती) = १० अदद एक खुराक
३—काली मिर्च = ७ अदद

ये तीनों चीजें ताजे पानीमें पीसकर कपड़ेसे छानकर बिना ही गरम किये रोगीको पिला दे। स्वादके लिये कुछ मीठा या नमक भी मिलाया जा सकता है।

—कन्हैयालाल मिश्र (स० रजिस्ट्रार कानूनगो)

प्रभु-कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव

यह घटना चार अगस्तके रात्रिकी है। दो मास पहले ही मेरे पतिदेवका स्थानान्तरण वाराणसी हुआ था। हमलोग सपरिवार वाराणसी आ गये थे। चार अगस्तको मेरे पतिदेव दौरेपर मीरजापुर गये। बँगलेपर चौकीदार था तथा एक चपरासी एवं एक मेरा निजी नौकर। ये सब इसी बँगलेमें रहते थे। रात्रिमें सोये हुए थे। मुझे किसी प्रकारका भय न था। मैं सब प्रकार अपनेको सुरक्षित समझती थी और भगवान् श्रीश्यामसुन्दरको अपना रक्षक समझती थी। मैं और मेरे चारों बच्चे सोये हुए थे। अन्दर आँगनमें मेरे घरका नौकर सोया था। रात्रिके करीब ढाई बजे थे। बाहरसे किसीने कहा—'कोई है, कोई है?' मैंने समझा कोई तारवाला होगा। चौकीदार तार ले लेगा; किन्तु दूसरे ही क्षण मेरे कमरेके दरवाजे, जो कि शीशेके ही थे, टूटने शुरू हो गये। मैंने सोचा कि 'मेरा चपरासी कहीं पागल तो नहीं हो गया है?' मैं दरवाजेके पास गयी। मैंने पूछा—'कौन है?' जवाबमें बाहर जो आदमी खड़ा था, उसने मुझे पिस्तौल दिखलाया और कहा—'चुप-चुप'। मैं तो डरके मारे चीख पड़ी और सीधे अन्दर घरका दरवाजा खोलती हुई आँगनमें पहुँची, जहाँ मेरा नौकर सोया था। मैंने उससे कहा कि 'डाकू कमरेका दरवाजा तोड़ रहे हैं।' फिर घबराहटमें पता नहीं मैंने क्या कहा। वह एक मोटा दण्डा लेकर कमरेमें आ गया, तो दो आदमी खिड़कीसे और दो आदमी दरवाजेमेंसे धमकाने लगे कि सिटकनी खोल दो, नहीं तो तुमको मार डालेंगे।' लेकिन वह लड़का जो सिर्फ

सोलह-सत्रह सालका रहा होगा, बड़ा बहादुर, वफादार और साहसी था। उसने कहा कि 'तुम मेरे मरनेपर ही अन्दर आ सकते हो' और दरवाजेके पास ही लाठी लिये खड़ा रहा तथा जोर-जोरसे चिल्लाता रहा कि 'चोर हैं, दौड़ो', किन्तु उस समय पानी बरस रहा था, इसलिये पड़ोसी भी कैसे सुनते। मेरे घबराहटकी तो सीमा न थी। चपरासी तथा चौकीदारको तो वे लोग पहले ही मारकर भगा चुके थे। घरमें अकेली मैं और वह नौकर—'सिर्फ दो आदमी थे। बच्चोंको, जो मेरे साथ शोर सुन आँगनमें आ गये थे और जब सब ओरसे अपनेको असहाय पाया तो अत्यधिक घबराये हुए थर-थर काँप रहे थे, मैंने गुसलखानेमें बन्द कर दिया। सुना था कि ऐसे लोग बच्चोंको भी मार डालते हैं। मैं भगवान्‌से प्रार्थना कर रही थी कि वे लोग भले ही सब सामान ले जायँ; लेकिन मेरे नौकर, बच्चों और मुझसे कुछ न कहें। वे आठ आदमी थे और यहाँ सिर्फ एक छोटा सोलह सालका साहसी लड़का था, जो उन्हें रोके था और जोर-जोरसे सहायताके लिये चिल्ला रहा था। जब मैं सब ओरसे निराश हो गयी और बच्चोंको भयभीत देखा, तब मैंने उनसे कहा कि 'सिर्फ भगवान्‌का ही आसरा है। वही अशरणशरण करुणासागर हमारी रक्षा कर सकते हैं। उन्हींका नाम लो।' जब सारे सहारे समाप्त हो जाते हैं, जब एकमात्र प्रभुका सहारा दीखता है, तभी सच्चे हृदयसे उन्हें पुकारा जाता है। मैं अब भी आश्चर्य करती हूँ कि उस समय मेरे सब बच्चे अति कातर वाणीमें **'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'** उच्चारण करने लगे। पाँच मिनट भी नहीं बीते होंगे कि

एकाएक कमरेमें जो नौकर चिल्ला रहा था, उसकी आवाज एकदम बन्द हो गयी। मैंने समझा कि कहीं उसको मार तो नहीं डाला अथवा मुँहमें कपड़ा तो नहीं ठूँस दिया। प्रभुका नाम लेनेके कारण मुझे अपने अन्दर शक्ति मालूम हुई और मैं कमरेकी ओर यह देखनेके लिये भागी कि 'जो लड़का हमारे लिये अपने प्राण हथेलीपर लिये खड़ा है, कहीं उसे वे लोग मार न दें, इसके पहले मैं अपनी जान दे दूँगी।' ऐसी भावना लेकर मैं कमरेमें घुसी तो देखती हूँ कि जैसे भगवान् साक्षात् ही सहायता करनेको अपने मधुर नामोंको विश्वासपूर्वक पुकारने-वालेकी रक्षा करनेके लिये आ गये हों। हमारे पड़ोसके ही बँगलेमें सी० ओ० लाइन्स श्रीकमलामलजी रहते थे। जब हमारे चौकीदारको डाकुओंने मारकर भगा दिया था तो यह बेचारा गिरता-पड़ता बारिसमें उन लोगोंकी आँख बचाकर पीछेकी ऊबड़-खाबड़ रास्तेसे श्रीमल साहबके यहाँ पहुँचा और उनके सिपाहीको जगाया। उसने शीघ्र ही अपने साहबको जगाया और कहा कि 'गोस्वामी साहब घरपर नहीं हैं और डाकू आ गये हैं। बहूजी और बच्चे अन्दर हैं।' वे परोपकारी सज्जन तथा उनकी धर्मपत्नी तुरंत जग गये। उनकी साहसी पत्नीने कहा कि 'वे अकेली हैं। आप शीघ्र ही जाइये। वे अपनी रिवाल्वरमें गोली भरकर वैसे ही नंगे पाँव बारिसमें भीगते हुए अपनी जानकी परवा न कर हमारे यहाँ अपने दो सिपाहियोंको लेकर आ पहुँचे और उन डाकुओंको धमकाया कि 'यदि नहीं भागोगे तो गोली चला देंगे। डाकुओंने समझा कि बहुत आदमी सहायताको आ गये, अतः वे सब शीघ्र ही जिधरसे मौका लगा, भाग गये। जब

मैं कमरेमें आयी तो वे ही परोपकारी सज्जन भगवान्के स्वरूप बनकर हमारी रक्षाके लिये आ गये थे। मैंने तुरंत उनके चरण पकड़ लिये। धन्य हैं उनकी वीर पत्नी, जिन्होंने प्राणोंका भय होते हुए भी एक दूसरी नारी एवं उसके बच्चोंकी रक्षाके लिये अपने पतिको भेज दिया। उस दिन मुझे प्रभुके नामोच्चारण एवं उनकी असीम कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। जय हो भगवान् दीनबन्धुकी!

—धर्मपत्नी गोस्वामी श्रीहरिजीवनलालजी, जिला सहायता तथा पुनर्वास-अधिकारी—वाराणसी।

गरीबकी ईमानदारी

घटना कुछ वर्ष पहलेकी है। तारीख १६-५-६४ के दिनको करीब १० बजेकी है। सोजतरोडमें श्रीसीतारामजी नामक ख्याति-प्राप्त स्वर्णकार हैं। आपकी दूकानपर तीन व्यक्ति और भी काम करते हैं। दिनांक १६ को सीतारामजीने गलेमें पहननेकी चैन या कनकतीको साफ करनेके लिये तेजाबके प्यालेमें डाला; किन्तु अनजानसे तेजाबके प्यालेके पानीको बदलनेके लिये, सत्यनारायण नामक लड़केने, जो सीतारामजीकी दूकानपर रहता है, रास्तेमें उड़ेल दिया। कनकती रास्तेमें गिर गयी। उसकी लागत करीब पाँच सौ रुपयेकी थी। यह जानकर कि कनकती खो गयी है, सभी लोगोंने बहुत तलाश किया, पर कोई पता न चला। सभी लोग परेशान एवं उदास थे, परंतु कनकतीका किसीको भी ध्यान न था। सत्यनारायण बेचारा उदास बैठा था, लेकिन सीतारामजी धैर्यकी मूर्ति बने विचार रहे थे और उन्होंने सत्यनारायणको कुछ भी नहीं कहा। कनकती रास्तेमें वंशीलाल राठौरके लड़केको मिल गयी थी और वह अपने घरपर ले गया था। जब शामको वंशीलाल घरपर आया तो बच्चेने कहा कि 'मुझे यह मिली है।' इधर मुहल्लेमें बात चल रही थी कि सीतारामजीकी कनकती खो गयी है। वंशीलाल घर आते ही दो पड़ोसियोंको साथ लेकर सीतारामजीकी दूकानपर आया और कनकती उन्हें दे दी। सीतारामजीकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा और उन्होंने भी वंशीलालके लड़केको सोनेके कर्णफूल पहना दिये।

ऐसी ईमानदारी कोई बहुत बड़ी महत्त्वकी चीज नहीं, यह

तो स्वाभाविक सभीमें होनी चाहिये; परंतु वर्तमान युगमें, जहाँ बड़े-बड़े अमीर बेईमान हो रहे हैं, दूसरोंके हकके पैसोंपर मन चला लेते हैं, वहाँ गरीबकी ईमानदारी बहुत बड़ी सराहनीय बात है और असलमें ईमानदारी बची भी है—कुछ गरीबोंमें ही। भारतमें ऐसे ही व्यक्तियोंकी आवश्यकता है।

—कन्हैयालाल वर्मा, सोजतरोड

जॉन एडम्सकी न्यायप्रियता

अमेरिकन राष्ट्रपति जॉन एडम्स (१७३५—१८२६) अमेरिकन स्वातन्त्र्य-युद्धके प्रमुख नायकोंमेंसे थे। अमेरिकन स्वातन्त्र्य-युद्धके बहुत पहिलेसे ही अमेरिकामें ब्रिटिश अधिकारियोंके विरुद्ध सर्वत्र रोष और घृणा फैली हुई थी। फलतः सन् १७७० ई० में एक दिन एक अमेरिकन भीड़ने एक अंग्रेज सन्तरीको घेरकर बुरी तरह मारना-पीटना आरम्भ किया। समाचार पाकर अंग्रेज अधिकारी कैप्टन प्रीस्टन छः सैनिकोंके साथ अंग्रेज सन्तरीको बचानेके लिये दौड़ा। उत्तेजित भीड़ने उसकी भी बुरी तरह मरम्मत की और एक अंग्रेज बेहोश होकर गिर पड़ा। आत्मरक्षाका कोई उपाय न देख अंग्रेजोंने भीड़पर गोली चला दी, जिससे दो अमेरिकन मारे गये और तीन बादमें अस्पतालमें जाकर मर गये। प्रीस्टन और उसके छः सैनिक हत्याके अपराधमें पकड़े गये और मुकदमा चालू हो गया।

इस समय अमेरिकन जनतामें प्रीस्टनके विरुद्ध बहुत उत्तेजना थी। यदि प्रीस्टन जेलमें बन्द न कर दिये जाते तो सम्भवतः जनता उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालती। प्रीस्टनको सारे अमेरिकामें एक भी वकील पैरवीके लिये नहीं मिला। इसी समय जॉन एडम्सने घोषणा की कि 'प्रीस्टन निर्दोष है, उसने जो कुछ किया आत्मरक्षार्थ किया, उसकी पैरवी मैं करूँगा।' जॉन एडम्सने मुकदमेकी पैरवी की और प्रीस्टन निर्दोष छूट गये।

जॉन एडम्स एक कट्टर धार्मिक घरानेके थे। उनका विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्तिको केवल भगवान्‌को ही प्रसन्न

करनेका प्रयत्न करना चाहिये। उसकी प्रसन्नतामें ही सबकी प्रसन्नता है और उसकी अप्रसन्नतामें ही सबकी अप्रसन्नता है। जॉन एडम्सका विश्वास सच्चा सिद्ध हुआ। स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके पश्चात् जॉन एडम्स अमेरिकाके उपराष्ट्रपति बनाये गये और जब जार्ज वाशिंगटनने तीसरी बार राष्ट्रपति बनना अस्वीकार कर दिया तब वे बहुमतसे राष्ट्रपति चुने गये।

एडम्स-वंश अमेरिकाके अत्यन्त प्रतिभाशाली वंशोंमें है। जॉन एडम्सके जीवनकालमें ही उनके सुपुत्र जॉन किन्सी एडम्स अमेरिकाके राष्ट्रपति चुने गये। यह सौभाग्य कि बाप-बेटे दोनों राष्ट्रपतिके पदतक पहुँचे, एडम्स-वंशके अतिरिक्त आजतक और किसीको यह प्राप्त नहीं हुआ। जॉन एडम्सके पौत्र चार्ल्स फ्रांसिस एडम्स अमेरिकाकी ओरसे ब्रिटेनमें राजदूतके पदपर रहे; जो उस समय बड़े महत्त्वका समझा जाता था।

जॉन एडम्सके प्रपौत्र हेनरी एडम्सका स्थान अमेरिकाके प्रधान साहित्यिकों और विचारकोंमें है। हेनरी एडम्स गीताके अनन्य प्रेमी थे। अपनी लंकायात्रामें जब वे थांडीके बौद्ध-मन्दिरमें पहुँचे तो लगभग आध घण्टेतक पवित्र वृक्षके नीचे ध्यानमग्न बैठे रहे और उसके पश्चात् उन्होंने एक लम्बी कविता लिखी-(Buddha and Brahma) बुद्ध और ब्रह्म। जिसमें उन्होंने बुद्धके संन्यास-मार्गकी अपेक्षा गीताके निष्काम कर्मयोगको श्रेष्ठ ठहराया है। मर्सनकी तरह हेनरी एडम्सने भी ब्रह्मसे ब्रह्म-निष्ठ योगी—निष्काम योगीका अर्थ लिखा है। यह कविता पहली बार अमेरिकन पत्रिका येल रिव्युमें १९१५ में छपी थी।

—श्रीराजेन्द्रप्रसाद जैन, तिस्सा

स्त्रीरूपमें देवी

यह घटना कुछ वर्ष पुरानी है। मैं बैंकसे अपना चार हजारकी कीमतका जेवर और दो हजार रुपये नकद निकलवाकर पर्समें रखकर ला रही थी। मेरे पास एक डलियामें बाजारसे लायी हुई कुछ और भी चीजें थीं। मैंने अपना पर्स इस डरसे कि कहीं रास्तेमें इधर-उधर न हो जाय, उस टोकरीमें ही रख दिया था। मैं लोकल बसमें आ रही थी। न जाने कैसे मेरा पर्स टोकरीमेंसे बसमें गिर गया। जब मैंने घर आकर देखा तो पर्स न देखकर मेरी हालत खराब हो गयी। मैंने सोचा कि मैं आफिस अपने पतिको फोन करूँ। मैं यह सोच ही रही थी कि इतनेमें क्या देखती हूँ कि एक भद्र महिला मेरा पर्स लिये दरवाजेपर खड़ी है; क्योंकि उस पर्समें मेरी नोटबुक थी, जिसपर मेरा नाम-पता लिखा था। जिससे उन्हें मेरा मकान फौरन मिल गया। मैं तो देखकर गद्गद हो गयी। मुझे तो स्त्रीरूपमें वह देवी दिखायी दीं। आजकलके जमानेमें इतनी निर्लोभता कठिनतासे ही देखनेमें आती हैं। मैंने उनका नाम-पता पूछा तो उन्होंने बड़ी कठिनतासे बताया कि मेरा नाम सुशीला गुप्ता है। उन्होंने कहा कि मैंने तो अपना फर्ज अदा किया है; इसमें प्रशंसाकी क्या बात है; परंतु मेरा मन नहीं मानता कि जिसने मेरे ऊपर इतना बड़ा उपकार किया; मैं उसकी प्रशंसामें दो शब्द भी न कहूँ। मेरी लड़कीकी शादी है, इसीलिये मैं जेवर लायी थी। यदि न मिलता तो पता नहीं मेरी क्या दशा होती।

—सरला देवी

बड़ोंका पुण्य

निरंजनके हिस्सेमें बाप-दादोंकी सम्पत्तिके बँटवारेमें डेढ़ बीघा जमीन अहमदाबादके नजदीक मिली थी। घटनासे बारह वर्ष पूर्व उसके दाम दो हजार भी नहीं थे। फिर 'जो जोते उसकी जमीन'का कानून बन गया। अतः सरकारी कागजोंमें वह जमीन जोतनेवाले किसानके नामपर चढ़ गयी। सरकारी कीमतके अनुसार केवल तीन सौ रुपयेमें जमीन दे देनेका आदेश हो गया। निरंजन मध्यम वर्गका युवक था। मुश्किलसे नौकरी करके कुटुम्ब चलानेभरका कमा पाता था। अब तो जमीन भी हाथसे निकल जानेकी नौबत आ गयी। इससे निरंजनको बड़ी परेशानी हुई।

परंतु ईश्वरने किसानको सद्बुद्धि दी। उसने निरंजनसे कहा—'तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारी जमीन मुझे नहीं लेनी है। चलो; मैं कोर्टमें बयान दे देता हूँ कि उसके मालिकको ही दे दी जाय।'

निरंजनको यह बात नयी-सी लगी। उसने पूछा—'पर तुम इस प्रकारका बयान किसलिये दोगे? जहाँ मुफ्तमें जमीन मिलती हो, वहाँ कोई ऐसा क्यों करेगा?'

किसानने कहा—'बात सच है, कानूनके अनुसार ही सरकार मुझे जमीन दे रही है, परंतु मुझे तुम्हारे दादाजीका ऋण उतारना है। सुनो, आजसे सत्तर वर्ष पूर्व तुम्हारे दादाने मेरे पिताको अमुक रुपये देकर सहायता की थी। उस समय उतने रुपये हमें कोई नहीं दे रहा था, अतएव हमारे लिये वे रुपये एक बड़ी भारी सहायता थी। हमलोग तुम्हारे दादाको वे रुपये लौटा नहीं

पाये, पर हम उन्हें भूले नहीं। उन्हींके बदलेमें तुम्हारी जमीन मैं वापस दे रहा हूँ।

इस बातके सुनते ही निरंजनकी आँखोंसे आँसू ढलक पड़े और उसने कहा—'ऐसा ही होता है, बड़ोंके पुण्यने आज इस विपत्तिके समय हमारी सहायता की।'

दूसरे ही दिन कोर्टमें जाकर किसानने कानूनके अनुसार लिखावट कर दी। जमीन निरंजनके नामपर चढ़ गयी। अब पंद्रह हजार रुपये मूल्यपर वह जमीन बिकी है और उसके रुपये निरंजनको मिल गये हैं। निरंजनकी आँखोंके सामने दादाजीके इस शुभ कार्यकी स्मृति लहरा रही है।

—शान्तिलाल दीनानाथ मेहता

प्रजावत्सल राजा

भावनगर स्टेटके समयकी बात है। उस समय भावनगरकी गद्दीपर महाराज कृष्णकुमारसिंहजी थे। उनके समयमें एक बार सारे राज्यमें भयंकर अकाल-जैसी परिस्थिति पैदा हो गयी।

लोगोंका कष्ट दूर करनेके लिये राज्यकी ओरसे राशनिंगकी दूकानें खोली गयीं; पर इन बुरे दिनोंमें महुआके पास एक बेलंगर गाँवमें नया ही प्रसंग बना।

सारे गाँवके सब किसानोंके कूएँ सूख गये थे। पर उनमें एक किसान बड़ा भाग्यवान् निकला। दो बार जोड़नेपर भी कूएँका पानी नहीं चुकता था।

किसानको बड़ा आनन्द मिला और सबेरेसे शामतक उसके घरके बूढ़े-बालक सभी खेतमें जुट गये। खूनका पानी करके उन्होंने ढाई बीघेमें जुवार बोयी। खेती पकी और देखते-ही-देखते खेतमें जुवारके दो ढेर लग गये। किसानको बड़ी राहत मिली कि अब बच्चे भूखों नहीं मरेंगे।

किसान यह सोच ही रहा था कि सामनेसे सरसराती एक घोड़ागाड़ी आती दिखायी दी। थानेदार साहेब बड़े रोबदाबके साथ गाड़ीसे नीचे उतरे।

'अरे! यह जुवार तेरी है?' साहेबने रोबके साथ पूछा।

'हाँ जी साहेब! कूएँमें पानी था, इससे बच्चोंके भाग्यसे यह हो गयी।' किसानने नम्रतासे उत्तर दिया।

'इसमेंसे आधी जुवार तुझे राज्यको देनी पड़ेगी। थानेदार साहेबने जुवारके ढेरकी ओर कड़ी नजरसे देखा।

'अरे साहेब! इस जुवारसे तो अगली फसलतक मेरे बच्चोंका भी काम नहीं चलेगा, फिर मैं इसे कैसे दे सकूँगा।' किसानने गिड़गिड़ाकर कहा।

'अरे, तू तो बड़ा मुँहफट मालूम होता है। मेरे सामने बोलता है। कल मैं गाड़ा (गाड़ी) भेजूँगा, उसमें यदि जुवार नहीं भरी तो फिर जेलके सींकचोंमें ढकेलना पड़ेगा।' अपने घरकी फौजदारी चलाकर थानेदार साहेब चले गये।

'अरे! यों परेशान क्यों हो रहे हो? मैंने सुना है—महाराजा साहब गोपनाथके बँगलेपर हवा खाने आये हुए हैं। करो न जाकर उनसे अर्ज, जो इस थानेदारको भी पता लगे कि जो झूठी-झूठी घरकी कानून निकाल रहा है।' दूरसे बात सुनकर किसानकी घरवाली हिम्मत बँधाने पास आ गयी थी।

जैसे बुझते दीपकमें नया तेल पड़ा हो, वैसे ही किसानकी आँखें चमक उठीं। अन्यायके सामने इन्साफ माँगनेका नया विश्वास पैदा हो गया। सन्ध्या होते ही घरवालीको जुवार सँभालनेके लिये खेतपर छोड़कर किसान महाराजा साहेबको फरियाद सुनाने अँधेरेमें ही चल दिया और पौ फटते-फटते बँगलेपर पहुँच गया।

सूरज उगा, अतः महाराजा साहेब घूमनेके लिये निकले। किसान साहस बटोरकर पास गया; पर जबान नहीं खुली।

आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली और वह महाराजाके पैरोंपर पड़ गया।

श्रीकृष्णकुमारसिंहजीने किसानको उठाया और खूब दिलासा देकर उससे बात पूछी। किसानने अपने ऊपर होते जुल्मकी बात

सुनायी। गरीब किसानकी जुवारको थानेदार बेकानूनी हजम करना चाहता है—यह सुनते ही महाराजाकी आँखें लाल हो गयीं। उन्होंने उसी समय कागज मँगवाकर थानेदारकी बरखास्तगीका हुक्म लिख दिया।

राज्यके दो आदमियोंको अपनी मोटर देकर उस किसानके साथ भेजा।

घरवाली जुवारकी देख-रेख कर रही थी। थानेदार साहेब गाड़ा (गाड़ी) भेजें, इसके पहले ही वे नौकरीसे छूट गये। गरीब किसानके बच्चोंको रोटी मिली। इससे इतना ही नहीं हुआ, सारे गाँवसे अधिकारियोंका अन्याय दूर हो गया। राजाके प्रति लोगोंकी भक्ति जाग उठी। आज भी श्रीकृष्णकुमारसिंहजीके वंशका कोई उस बेलंगर गाँवके पाससे निकलता है तो सारा गाँव तन-मन-धनसे उसका स्वागत करता है। (अखण्ड आनन्द)

—चीमनलाल शामजी भाई पुरोहित

न्याय

[घटना छोटी, पर सिद्धान्त बड़ा सच्चा]

वर्तमानकालमें प्रायः न्याय भी कागजके कुछ टुकड़ोंपर बिकने-सा लगा है। अपने साथ घटित उन दो घटनाओंको देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया, जिनमें 'ईश्वरके यहाँ अब भी बावन तोले पाव रत्ती सही-सही न्याय होता है।' यह स्पष्ट झलकता है।

घटनाएँ बहुत पुरानी नहीं, कुछ दिनों पूर्वकी ही हैं। एक दिन मैं अपने एक साथीके साथ बाजारसे गेहूँ खरीदने गया। दूकानदार गेहूँ तौलने लगा, मैं देखने लगा। वह भूलसे पाँच किलो गेहूँ अधिक तौल गया। मुझे यह सब ज्ञात था। मेरी आत्माने नहीं चाहा कि मैं उनको घर लाऊँ, लेकिन मनने आत्माका साथ नहीं दिया। मन कहने लगा—'तुम्हारा इसमें क्या दोष! तुमने कोई चोरी थोड़े ही की है।' मैं आत्मा और मनके इस संघर्षमें कुछ भी निर्णय नहीं कर सका। तब चुपकेसे मैंने अपने साथीसे कहा—'दूकानदारने भूलसे पाँच किलो गेहूँ अधिक तौल दिये हैं, उन्हें वापिस कर देना चाहिये।'

साथीने उत्तर दिया—'तुम भी अजीब हो। उसे बतानेकी क्या आवश्यकता है? गलती उसकी है।' मनकी जीत हो गयी और मनकी जीत तो पहले ही थी, नहीं तो किसीसे पूछनेकी क्या आवश्यकता। आत्माकी बात मानकर गेहूँ वापिस कर दिये जाते। अस्तु! मैं उन पाँच किलो अधिक गेहुँओंको ले आया। संयोगसे उसी समय पिसाने भी जाना पड़ा। गेहूँ पिसाकर ले आया और

ऊपर सीढ़ियोंपर चढ़ रहा था कि आटेके पात्रका कुन्दा टूट गया और पात्र नीचे एक ऐसे स्थानपर गिरा, जहाँ उसमेंसे ठीक पाँच किलो आटा नालीमें गिर गया, शेष एक पवित्र स्थानपर सुरक्षित रहा। मैं समझ गया कि यदि गेहूँ इस प्रकार बिखरते तो शायद बीन भी लिये जाते, इसलिये आटा ही बिखरा ताकि उसे उठाया न जा सके।

इससे कुछ दिनों पश्चात् मैं इस घटनाको पूर्णतः भूल गया। कुछ रुपये लेकर पुस्तकें खरीदने जा रहा था। रास्तेमें ही आवश्यकताकी कोई दूसरी वस्तु भी खरीदनी पड़ गयी। वस्तुकी कीमत थी तीन रुपये। मैंने दूकानदारको दो-दो रुपयेके दो नोट दे दिये। उसे एक रुपया वापिस करना चाहिये था; किन्तु भूलसे यह समझकर कि मैंने उसे पाँच रुपयेका नोट दिया है, उस दूकानदारने मुझे दो रुपये वापिस कर दिये। मुझे पता था कि वह एक रुपया अधिक वापिस कर रहा है, फिर भी मैं पैसेके लोभमें फँसकर उन दोनों रुपयोंको लेकर आगे बढ़ गया। वहाँ जाकर किताबें खरीदीं और जब पैसे देने लगा तो देखा कि जेबसे किसीने पाँच रुपयेका एक नोट गायब कर लिया था।

अचानक ही मुझे पहली घटना याद आ गयी। विचार करने लगा, 'पहली बार कुछ दण्ड नहीं मिला था। अबकी बार एकके चार ब्याजके देने पड़े। इससे सुन्दर न्याय और क्या हो सकता है?'

—बी० एन० शर्मा, एम्० ए०, साहित्यरत्न

इन्द्राक्षी-कवचके प्रयोगसे अपूर्व लाभ

'कल्याण' वर्ष ३७ अंक १० में किन्हीं बहनने इन्द्राक्षी-देवीका यन्त्र-कवच-स्तोत्र छपवाया था। मैं उसका अध्ययन करता आ रहा हूँ और प्रतिदिन पूजामें पाठ करता हूँ। घटना अभी हालकी है। मेरे चचेरे भाई रामगोपालजीकी पत्नी लक्ष्मीदेवीको अचानक दिलका दौरा ता० २४। ४। ६४ को रात्रिके करीब ११ बजे हुआ। उस समय मैं सो रहा था। उन्होंने आकर जगाया और कहा—'हमारी स्त्रीकी बोली बन्द हो गयी है। शरीर ऐंठा जा रहा है, चलकर देखो।' मैंने जाकर देखा, वास्तवमें बात सही थी। मैंने उनसे कहा—'आप तुरन्त किसी अच्छे डॉक्टरको लाकर दिखलाइये। मामला बहुत नाजुक मालूम हो रहा है।' वे डॉक्टरको बुलाने चले गये। मैं देवीजीका स्मरण करने लगा। देखते-ही-देखते लक्ष्मीकी आँखें बन्द हो गयीं। मुँहसे फिचकुर बहने लगा तथा शरीर जडवत् काठके समान होकर ठंडा पड़ गया। मैंने यह देखकर उसे मन्त्रोंसे फूँकना शुरू किया। इन्द्राक्षी-कवच तथा स्तोत्रका ऐसा चमत्कार हुआ कि एक ही मिनटमें उसने आँखें खोल दीं और कुछ मरतबे फूँकनेपर उठकर बैठ गयी। यह घटना पाँच मिनटके अन्दर घटित हुई।

इतनेमें रामगोपालजी डॉक्टरको लिवाकर आ गये। डॉक्टरने देखा और एक सुई लगायी तथा 'यह दौरेकी बीमारी है, दवासे ठीक हो जायगी'—कहकर वे चले गये। रामगोपालजी डॉक्टरके साथ दवा लाने चले गये। उन लोगोंके जानेके बाद फिर पीड़ा शुरू हो गयी। वह छटपटाने लगी और शरीर ऐंठने लगा। इसी

बीचमें रामगोपालजी दवा तथा किन्हीं एक झाड़-फूँक करनेवालेको साथ लेकर आये। उन्होंने झाड़-फूँक शुरू की, परन्तु पीड़ा बढ़ती ही गयी। शरीर ऐंठता ही रहा। करीब एक घण्टेतक झाड़-फूँक करनेपर भी जब कोई लाभ नहीं हुआ, तब वे हताश होकर बैठ गये।

अब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने फिर देवीजीका ध्यान करके इन्द्राक्षी-कवच-स्तोत्रसे फूँकना शुरू किया। पाँच मिनटके अन्दर ही सारा रोग जाता रहा। वह उठकर बैठ गयी और सब लोगोंसे मजेमें बातें करने लगी। इन्द्राक्षी-कवचका जैसा अपूर्व चमत्कार आज देखनेको मिला, वैसा अपने जीवनमें पहले मैंने कभी नहीं देखा था। इन्द्राक्षी-कवच 'कल्याण'में छपवाकर उन बहनजीने बड़ा ही उपकार किया है।

—श्रीरामगुलाम केसरवानी, गिरधरका चौराहा, मीरजापुर

—हस्ताक्षर—रामगोपाल, श्रीमती लक्ष्मीदेवी

खूनी-वादी बवासीरकी अनुभूत दवा

खूनी तथा वादी—दोनों प्रकारके बवासीरके नाशका यह अनुभूत प्रयोग है। मैंने स्वयं और अन्य बहुत-से लोगोंपर प्रयोग करके इससे लाभ उठाया है। नुस्खा यह है—नारियलकी छाल (जटा)-को भस्म करके एक तोलेभर पाँच दिनोंतक रोज फाँक लें और ऊपरसे गायकी छाछ पाव या आध सेर रुचिके अनुसार पी लें। जबतक दवा लें तबतक तेल, खटाई, गुड़ नहीं खायँ। लाल मिर्च तो बवासीरके रोगीको कभी नहीं खानी चाहिये।

—श्रीमनोहरसिंह मेहता, सोनासेरी, दान्ता मैंरू,
उदयपुर (मेवाड़)

सद्व्यवहारका फल

जब मैं बारह वर्षकी थी, तब वे दोनों दो वर्षके होंगे। पर ऐसा अनुमान होता था कि वे मुझसे अधिक आयुके हैं। मैं उनपर आसक्त—न्योछावर हो चुकी थी। वे मुझे पतनकी ओर ले जायँगे, मुझे यह ध्यान ही न था। मैं सदा उन्हें अपने साथ रखती थी—स्कूल, घर-बाहर सभी जगह। शयनागारमें भी मैं उनका साथ नहीं छोड़ती। दो तरफ वे दोनों और बीचमें मैं।

मुझे इसमें बड़ा आनन्द आता। पर मेरा यह आनन्द जब कभी पिताजीके सामने स्पष्ट हो जाता तो वे ऐसे देखते जैसे सिंह गायको देखता है; पर मुझे किसीकी बात माननी नहीं थी। मैं न मानी। अब तो सबके सामने वे दोनों प्रत्यक्षरूपमें मेरे साथ रहने लगे। एक क्षणके लिये भी मेरे पास वे न होते तो ऐसा लगता कि मैं किसी ऐसी अमूल्य वस्तुको खो बैठी हूँ, जिसके बिना मेरा जीवन बेकार है।

तीन सौ साठ दिन बीते। मैं तेरह वर्षकी हुई और घरसे मेरा हुआ निष्कासन, मैं दूसरे घर गयी। बेटीसे बहू बनी, पत्नी बनी, गृहिणी बनी। स्वतन्त्रताके मुँह-खोल वातावरणसे घूँघटमें आयी और मग्न हो गयी उसी संसारमें, किन्तु इतनेपर भी मुझे कोई भय नहीं था। मैं अपने उन दोनों साथियोंको साथ ही लायी और साथ ही रखने लगी। मेरी सेवासे मेरे सास-ससुर सभी प्रसन्न थे, इसलिये वे कुछ बोलते नहीं थे।

मुझे डर था केवल उनका। एक दिन उन कल्याणप्रेमीने कहा—'शान्ति! मेरे साथ रहकर तुम्हें यह शोभा नहीं देता। अतः इन दोनोंको यहाँसे भगा दो।' कभी-कभी मैं हँसकर टाल

देती, कभी उत्तर न देती और कभी खीझकर कह देती—'जाइये आप! मैं नहीं छोड़ सकती। ये मेरे बचपनके दोस्त हैं।' मेरी इन बातोंसे उनके हृदयपर चोट लगती होगी, किन्तु वे बिना कुछ कहे सुन लेते।

एक दिन फिर यों ही उन्होंने कहा—'शान्ति! छोड़ दो इन्हें।' उस समय मैं खीझ गयी और बोली—'नहीं छोड़ती, जाओ, जो करना हो सो करो। रोज यही छोड़ दो, छोड़ दो, छोड़ दोकी रट लगी रहती है। यों कहती हुई मैं दूसरे कमरेमें चली गयी। वे चुपचाप कुछ क्षण खड़े रहे, फिर हँसकर बाहर चले गये। उस दिनसे मैं नाराज हो गयी। मैंने बोलना बन्द कर दिया, किन्तु वे मौन नहीं रहे। वही प्रेम, वही बर्ताव, होठोंपर वही मुसकान नाचती रही। छोड़ दो कहनेकी जगह अब वे स्वयं उन दोनोंका पूर्ण प्रबन्ध भी करने लगे। मुझे तो बोलना था नहीं, सो मैं नहीं बोली एक माह। माताजीसे बात छिपी न रह सकी। एक दिन पूछ ही लिया उनसे—'बेटा! तेरे पाँव एक महीनेसे घरमें नहीं जमते। क्या बात है? झगड़ा कर लिया है क्या तुमलोगोंने?' उत्तरमें उन्होंने कहा—'नहीं माँ, झगड़ा कैसा। मैं एक दूसरे काममें लगा रहता हूँ, इसलिये घरमें कम बैठता हूँ।' मैं सुनकर चकित हो गयी, पर मेरे बर्तावमें कोई अन्तर नहीं पड़ा।

एक दिन उनके कई मित्र घरपर आये। बात चल पड़ी। एक मित्रने कहा—'भाई! तुम तो सुपारी-तम्बाकू अभियान चला रहे हो, दूसरोंको रोक रहे हो, पर तुमने कभी अपने घरपर भी दृष्टि डाली है? मैंने तुम्हारे कहनेसे 'बीड़ी छोड़ दी।' किसीने कहा—'सिगरेट छोड़ दी,' किसीने कहा—'तम्बाकू छोड़ दी।' एकने कहा—मैंने तुम्हारे कहनेसे गाँजातक छोड़ दिया। किन्तु तुम्हारी

शान्तिने तो अपने दोनों दुर्व्यसन—सुपारी-तम्बाकूको अपना ही रखा है। इसका तो यही अर्थ होता है कि वह तुम्हारी बात नहीं मानती।'

मैं किवाड़की आड़में सब सुन रही थी। उत्तरमें उन्होंने कहा—'ऐसी बात नहीं है, वह तो बड़ी सीधी, शुद्ध बुद्धिकी भोली-भाली प्रेमप्रतिमा है। मुझे न जाने क्या समझकर मेरी इतनी सेवा करती है कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। इस विषयमें मैंने आजतक उससे कुछ कहा ही नहीं। तुमलोग विश्वास रखो। यदि मैं उससे एक बार भी कह दूँ तो अवश्य छोड़ देगी। अवसर आने दो, वह भी कर दिखाऊँगा।'

पंचायत समाप्त हुई। सब लोग चले गये। किन्तु वे बैठे सोच रहे थे, क्या? सो कैसे कहूँ, पर उनकी उपर्युक्त बातोंपर मेरा हृदय टूक-टूक हो गया। जिससे मैं बोलती नहीं, वह मेरी बड़ाई करता है; जिससे मैं क्षमा नहीं माँगती, वह मुझसे प्रेम करता है; मेरा जीवन-साथी है; जिसे मैं हर क्षण कुछ-न-कुछ कह ही दिया करती हूँ, वह हँसकर मुझे कितने विशेष आदर तथा प्यारभरे शब्दोंसे सम्बोधित करता है। वह मेरा देवता है। मेरी नैयाका कर्णधार है और मैं इतनी दुष्टा हूँ कि उसकी एक बात भी नहीं मान सकती।'

उसी क्षण मैं उनके पैरोंपर गिर पड़ी और बोली—'मुझे क्षमा कर दें। मैं वचन देती हूँ कि आजसे मैं तम्बाकू, सुपारी कभी नहीं खाऊँगी।' जीवनमें यह बड़ा सौभाग्यशाली दिन था, जिस दिन मैं उनकी बातों तथा 'कल्याण'के उपदेशोंपर विश्वास कर इन दुर्व्यसनोंसे मुक्त हुई।

—शान्तिदेवी शर्मा

दयालु देवीमाई

नासिकमें 'देवीमाई' नामका अस्पताल है। इस नामके पीछे कुछ इतिहास है। देवीके पतिकी मृत्यु हो गयी। उसके भाग्यमें इस युवावस्थामें वैधव्यका आघात लगना लिखा था। उसके ससुरालमें उसके ननदोई थे, वे भी तत्काल जाते रहे और ननद बहुत बीमार पड़ गयी। सब कहने लगे—'यह देवी ही सबको खाये जा रही है।' वह पीहर गयी तो उसकी छोटी बहन बहुत बीमार हो गयी""देवीके प्रति शंका बढ़ने लगी। सभी उसे सर्वभक्षी राक्षसी-बलकी प्रतिनिधिरूप मानने लगे।

ऐसे वातावरणमें कभी तो देवीको अपना जीवन भाररूप लगता। कभी जीवनका अन्त कर डालनेकी उसके मनमें आती। कोई भी उसके प्रति क्षणभरके लिये भी सहानुभूति नहीं दिखाता। हाँ, उसका एक भाई अवश्य उसका ध्यान रखता।

आखिर इस भाईने उसे नर्सके ट्रेनिंग स्कूलमें भर्ती करा दिया। देवी नर्सकी शिक्षा प्राप्त करके एक छोटे-से प्रसूतिगृहमें नियुक्त हो गयी। इस प्रसूतिगृहकी मुख्य संचालिका एक अंग्रेज महिला थी।

एक बार एक नीची जातिकी बहिन प्रसूतिगृहमें भर्ती हुई। रातको उसके पेटमें दर्द शुरू हुआ। उसे पाखानेमें ले जानेकी स्थिति नहीं थी, पर अस्पतालमें पाखानेका टब (कमोड) केवल अंग्रेजों और यूरोपियनोंके लिये ही था। देवीने इस नियमका भंग किया और कमोडको वह उस बहिनके पास ले गयी।

दूसरे दिन इस बातका पता लगनेपर उस अंग्रेज-महिलाका

पारा चढ़ गया। उसने देवीके साथ बहुत कड़ाईसे बातें कीं। इतनेपर भी देवीने सहज स्वरमें इतना ही कहा—'ऊँच-नीचका भेद तो हमलोगोंने बना लिया है। धर्मकी दृष्टिसे तो सभी एक कुटुम्बकी संतान हैं।'

अंग्रेज-महिलाने देवीको प्रसूतिगृहसे निकाल दिया। पर अब देवीका जीवनकार्य सँभल चुका था। अब उसे जीवनमें कहीं निराशा या असहायपन नहीं भासता था। देवीने अंग्रेज-महिलाका अस्पताल छोड़नेके बाद बचाये हुए वेतनके पैसोंसे तथा भाईकी मददसे पाँच-छः खाटवाले कमरेका अस्पताल शुरू किया। इस कमरेकी व्यवस्था उसके भाईने कर दी थी।

अब देवी केवल रोगियोंकी चारपाईके पास रात-दिन रहकर खड़े पैरों सेवा करने लगी। अठारह-अठारह, बीस-बीस घंटे लगातार वह मातृहृदयकी सजीव उर्मियोंके साथ रोगियोंका दुःख हलका किया करती और निःस्वार्थ देखभाल करती। अन्तमें उसके जीवन-कार्यकी सुगन्ध अपने-आप ही सब ओर फैलने लगी। अखबारोंमें विज्ञापन और फोटो छापनेकी उसे जरूरत नहीं पड़ी। उसकी इस उत्कृष्ट सेवा-भावनाके कारण अब वह केवल 'देवी' न रहकर लोगोंकी 'देवीमाई' बन गयी।

देवीमाईकी एक कोठरीके नन्हें-से अस्पतालको चारों ओरसे सहायता मिलने लगी। धीरे-धीरे वह एक भव्य बृहत् अस्पतालके रूपमें परिणत हो गया। इस अस्पतालकी इतनी ख्याति हुई कि उपर्युक्त अंग्रेज-महिला, जो एक समय देवीमाईकी स्वामिनी थी, उसके इस अस्पतालको देखने आयी।

बाहर मिलनेवालोंकी कतार लगी थी, उसीमें वह अंग्रेज-

महिला भी खड़ी थी। इस नये अस्पतालका कार्य देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हो रही थी, इसलिये वह इस अस्पतालकी संचालिकाको धन्यवाद देने आयी थी। उसे यह पता नहीं था कि एक समय जिस बहिनको उसने अपमान करके अपने अस्पतालसे निकाल दिया था; वही इस अस्पतालकी मुख्य संचालिका देवीमाई है।

इतनेमें देवीमाई बाहरसे आयी और ज्यों ही वह अंदर जानेको पैर उठा रही थी कि उसकी नजर उस अंग्रेज-महिलापर पड़ी। देवीमाईको याद आयी कि इसी बहिनके पास मैंने पहले नर्सका काम किया था। देवीमाई अंग्रेज-महिलाको अंदर केबिनमें ले गयी। अंग्रेज-महिला बोलनेमें रुक-सी रही थी, आखिर वह बोली—

'देवी! तुझे धन्य है। तेरे कामको आज मैंने अस्पतालके हर हिस्सेमें घूम-घूमकर देखा है। तुमने एक महान् सफलता प्राप्त की है। मानवजातिके दुःखोंको दूर करनेकी तेरी यह रात-दिनकी सतत चिन्ता तेरे सामने सबके मस्तक झुका देती है। तू मुझे अपनी भूलका प्रायश्चित्त करने देगी?'

तदनन्तर अंग्रेज-महिलाने अपने पर्समेंसे डायरी निकालकर कुछ लिखकर दिया और कहा—'इसको स्वीकार करके मेरी भूलको सुधारनेका अवसर मुझे दे, यही मेरी प्रार्थना है।'

देवीमाईने कागज खोलकर देखा—उसमें उस अंग्रेज-महिलाने लिखा था—'मेरी सारी सम्पत्ति मैं इस अस्पतालको भेंट कर रही हूँ—देवीमाईके भव्य जीवनकार्यके प्रति एक तुच्छ नम्र अंजलिके रूपमें।' (अखण्ड आनन्द)

—लल्लूभाई बकोरभाई पटेल

ईमानदारी

एक बार इन्हें अपने दरवाजेके समीप संध्याके समय एक बंडल मिला, मानो कोई अदृश्य शक्ति इनकी परीक्षा ले रही हो। इन्होंने घरके भीतर आकर उसे खोला तो देखा उसमें पूरे पंद्रह सौके नोट हैं जो सभी भीगे हैं। उनको स्टोपके सहारे सुखाया, समेटा, फिर तकियेके नीचे रखकर सो गये। पर बगलके मकानमें हल्ला-गुल्ला सुनकर तुरंत जग गये। बगलके मकानमें एक ठेकेदार साहब रहते थे, जातिके मुसलमान थे, जोर-जोरकी आवाज सुनकर ये उधर गये। ऐसा लगा कि अंदर मार-पीट-सी हो रही है। अड़ोस-पड़ोसके कई और लोग भी जुट गये। किवाड़ खोलकर किसी प्रकार भीतर गये। देखा, बाप-बेटे बेतरह उलझ रहे हैं। एक-दूसरेपर डेढ़ हजार रुपये चुरानेका आरोप लगा रहे हैं। बात बहुत बढ़ गयी है। इन्होंने सबकी उपस्थितिमें ही उनसे कहा, 'आपलोग एक-दूसरेपर संदेह करके व्यर्थ आपसमें क्यों लड़ रहे हैं? आपलोगोंमेंसे किसीने रुपये नहीं चुराये हैं। रुपये तो हमारे घरमें हैं, मैं अभी लाकर देता हूँ। डेढ़ हजार रुपयेका एक बंडल कुछ देर पहले मुझे आपके मकानके पास ही बाहर पड़ा मिला था।' इन्होंने घर जाकर तुरंत रुपये लाकर दे दिये। सब लोग आश्चर्यचकित रह गये और एक स्वरसे इनकी मानवताकी सराहना करने लगे। ठेकेदार साहेबका गृहकलह ही नहीं समाप्त हो गया, पिता-पुत्र पश्चात्ताप करने लगे और उनका एक-दूसरेपर अपूर्व विश्वास जाग्रत् हो गया। उन लोगोंने आनन्दातिरेकमें रुपये लेनेसे इनकार किया और कहा कि

इनसे सबको भोजन कराया जाय। वे किसी प्रकार न माने, सब मुहल्लेवालोंने पाँच सौ रुपये और मिलाकर सब लोगोंको दावत दी। सभी इन सज्जनकी ईमानदारीपर हर्ष प्रकट कर रहे थे।

—डॉ० रामेश्वरप्रसाद 'विशारद'

आश्चर्य घटना

घटना कुछ समयकी है। मेरे पड़ोसी वाराणसीमें रेलवे-कर्मचारी हैं। उनके पुत्र रामभरोस वर्मा सिलाई-मशीन रखकर वाराणसीमें ही रहते हैं। दोनों बाप-बेटेके निवासस्थानमें चार फर्लांगका अन्तर है। दोनों रेलवेलाइनके दोनों ओर रहते हैं। परंतु रामभरोस दोनों समय अपने पिताके क्वार्टरपर भोजन करने जाते हैं। एक दिनकी बात है कि रामभरोसके पिताने दोपहरको रामभरोससे कहा कि 'शामको हमें दस रुपये जरूर मिलने चाहिये, नहीं तो बड़ा हर्ज होगा।' रामभरोस अपने किसी ग्राहकसे अपनी मजदूरीके दस रुपये लेकर शामको भोजन करने अपने पिताके क्वार्टर जा रहे थे। वाराणसी-स्टेशनपर पुलके द्वारा लाइन लाँघकर प्लेटफार्मपर पहुँचे तो देखा कि एक युवतीको कुछ रेलवे कर्मचारी बहुत परेशान कर रहे हैं। रामभरोस भी वहाँ खड़े हो गये। पता लगा कि उस युवतीके पास टिकट नहीं है और वह अपने साथियोंसे अलग होकर भूलसे वाराणसी स्टेशनपर पहुँच गयी है। रेलवे बाबूने उस लड़कीको गाली दी। रामभरोस इसे सहन न कर सके। उन्होंने कहा—'आपलोग गाली क्यों देते हैं?' इतना सुनते ही गाली देनेवाले उस रेलवे बाबूने बिगड़कर कहा—'यह बिना टिकटके उतरी है। आप ही चार्ज दे दीजिये। आठ रुपये कुछ पैसे होते हैं। भगवत्कृपासे रामभरोसको आवेश आ गया और वही दस रुपयेका नोट, जो अपने पिताको देने ले जा रहे थे, रामभरोसने पेश कर दिया और उनसे रसीद लेकर लड़कीको जहाँ जाना था, वहाँका टिकट खरीदकर दे दिया।

इससे रामभरोसको बड़ा आत्मसन्तोष हुआ, पर वे सोचने लगे कि यदि मैं भोजन करने घर जाऊँगा तो पिताजी पैसेके लिये नाराज होंगे। यों सोचते हुए भूखसे व्याकुल वे प्लेटफार्मपर रेलकी पटरीकी ओर अपनी नजर लगाये हुए टहल रहे थे कि इनको सहसा नीचे एक चमकीला कागज (सिगरेटकी पन्नी), जिसपर किसीने पान खाकर थूक दिया था, दिखायी दिया। इन्होंने क्या वस्तु है यह जाननेके लिये उसे उठा लिया। इनके आश्चर्यका ठिकाना ही नहीं, उस चमकीले कागजके नीचे एक कागजमें सुरक्षित दस रुपयेका एक नोट रखा था। इन्होंने उसे उठा लिया और सहसा मुखसे निकला कि बाबा विश्वनाथकी नगरीमें मैं बिना भोजन किये कैसे सोता। मन-ही-मन भगवान्का गुण गाते हुए वे अपने पिताके क्वार्टरपर गये और अपने पिताजीको रुपये दे दिये। तदनन्तर भोजन करके अपनी दूकानपर लौट आये।

उस युवतीने रामभरोससे इनका पता पूछकर नोट कर लिया था। घटनाके तीसरे दिन सूट-बूटसे सज्जित एक सज्जन रामभरोस टेलर-मास्टरको पूछते हुए उनकी दूकानपर आये और इनको परसोंकी बीती बातोंकी याद दिलाकर, इनको दस रुपये देते हुए बोले कि 'वह मेरी बहिन थी।' रामभरोसने कहा कि 'भाई साहेब! मुझे तो उसी दिन रुपये मिल गये।' फिर सारी बातें बतलायीं। तब आगन्तुकने कहा कि 'यह तो आपको भगवान्ने पुरस्काररूपमें दिया है' और वह नमस्ते करके चले गये। रामभरोसने घर आनेपर मुझको ये सब बातें बतलायीं।

—श्रीसाहबशरणलाल शर्मा

मार्ग-भूली बहिनको सचमुच मानो भगवान् मिल गये

एक बार एक अधेड़ उम्रकी बहिन मेरे यहाँ आयी, मेरे सामने खड़ी होकर बोली—'भाई! आपके पड़ोसी नानालाल भाईने मुझे आपके पास कुछ सलाह पूछनेके लिये भेजा है।'

'अच्छी बात है, आइये, बैठिये।' मेरे यों कहनेपर वह मेरे सामने बिछी हुई शतरंजीपर बैठ गयी और बोली—'भाई! मैं एक दुखियारी विधवा हूँ! एक समय मैं सुखी थी, सगे-सम्बन्धी थे, पैसे थे, घर था; पर आज इनमेंसे कुछ भी नहीं है। मैं जिनको अपना कह सकती हूँ, वे मेरे सामने भी नहीं देखते। किंतु भाई! एक प्रकारसे कहूँ तो इसमें दोष मेरा है, मैं अपने ही दोषसे दुःखी हुई हूँ!'

यों कहते-कहते उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। मैंने धीरज देनी चाही, पर दसेक मिनटतक वह सुबक-सुबककर रोती रही, फिर शान्त हुई। तदनन्तर उसने अपनी सारी बातें पेट खोलकर मुझे सुनायीं।

उसकी बातोंका सार यह था कि वह एक सुखी पिताकी पुत्री और सुखी पतिकी पत्नी थी। पतिके घरमें आनन्दसे दिन बिता रही थी। दुर्भाग्यसे यौवनमें विधवा हो गयी। सन्तान थी नहीं। घर तथा पैसा था। वह कुछ स्वार्थी सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा फुसलायी जाकर लूटी जाने लगी। दूसरी ओर वह पतिके स्वार्थी मित्रोंके फन्देमें पड़ी। थोड़ेमें कहें तो वह बहिन अपने यौवन, घर, धन तथा पीहर-ससुरालके स्वजनोंकी ममता—सबसे हाथ

धो बैठी। उम्र अधेड़ हुई और शेष जीवनमें कठिनाइयाँ दिखायी दीं, तब उसके मनमें भविष्यकी चिन्ता जाग्रत् हुई। उसके पास सात-आठ हजार रुपये थे। इन रुपयोंसे वह सुखपूर्वक कैसे अपना जीवन-निर्वाह कर सकती है; यही सलाह उसे पूछनी थी।

मैंने कहा—'आप मुझसे सलाह पूछ रही हैं, इस प्रकार दूसरे किसीकी सलाह भी तो आपने ली होगी। अपने सगे-सम्बन्धियों-हितैषियोंसे भी तो पूछा होगा?'

'मैं बहुत जगह ठगायी जा चुकी हूँ। इससे किसीपर भी मेरा विश्वास नहीं रहा। भाई! कुछ सगे-सम्बन्धी तो मेरी ओर देखते ही नहीं। एकने मुझे सलाह दी कि 'तू हमारी फर्ममें रुपये जमा करा दे तो हम तुम्हें अच्छा ब्याज दे दिया करेंगे, जिससे तुम्हें रोटी हो जायगी।' एक परिचित सज्जनने कहा—'तेरे पैसोंमेंसे मेरे मकानपर एक घर बनवा ले, तू उसमें रहा कर और बचे पैसोंसे कोर-कसर करके जीवन चलाया कर।' इस प्रकार सभीके हाथका ग्रास उनके अपने मुँहकी तरफ ही जाता है। अत: उनपर मुझे कैसे विश्वास हो?'

बहिन सचमुच बड़े असमंजसमें पड़ी थी, यह मैंने देखा। उसने अपनी इज्जत खो दी थी। इससे कोई भला आदमी उसके साथ बात भी नहीं करता, फिर उसके काममें तो वह सहयोग देता ही कैसे? ऐसी विकट स्थितिमें पड़ जानेके कारण ही वह मेरे-जैसे अनजान आदमीके सामने पेट खोलकर बातें करने और सलाह लेने आयी थी।

उसे सच्चे रास्तेपर चलानेके लिये मुझसे जो कुछ बन सके, करना चाहिये—यह मुझे अपना कर्तव्य प्रतीत हुआ। वह शहरसे

दूर एक मुहल्लेमें एक छोटी-सी कोठरी किरायेपर लेकर उसमें रहती थी। मैंने तुरंत तो उसे इतनी ही सलाह दी कि 'तुम्हारे पास जो रुपये हैं, कोर-कसरके साथ खर्च चलानेके लिये उनमेंसे थोड़े-से रखकर बाकी सब रुपये बैंकमें बँधी मुद्दत (Fixed deposit)-के रूपमें जमा करा दो। इसके बाद सोचकर कोई अच्छा रास्ता बताऊँगा। नगद रुपयोंको साथ लिये घूमोगी तो फिर फँस जाओगी और रहा-सहा पैसा भी खो दोगी।'

मैंने साथ जाकर उसके रुपये बैंकमें जमा करवा दिये। फिर सोचनेपर मुझे एक मार्ग दिखायी दिया। एक छोटी-सी हाउसिंग सोसाइटी बन रही थी, उसमें जमीनके साथ दस हजार रुपये अन्दाज लगानेपर मकान बनाया जा सकता था। उस समय जमीनमें तथा मकान बनवानेमें इतनी मँहगी नहीं थी और उसपर कुछ लोन (उधार) भी मिल सकता था। मैंने साथ रहकर बहिनका यह काम करवा दिया। अब वह मकानकी मालकिन बन गयी। एक हिस्सेमें वह रहने लगी और शेष हिस्सोंको किरायेपर उठाकर मासिक ८०-८५ रुपये कमाने लगी। इन रुपयोंमेंसे लोनका ब्याज तथा किस्त चुकानेके बाद जो कुछ बचता, उससे उसका पोषण-खर्च निकलने लगा।

पाँच-सात वर्षोंमें वह बहिन ऋणसे मुक्त हो गयी और उसके मनमें उत्साह आया। अब सगे-सम्बन्धियों तथा परिचितोंके बीच पूर्ववत् रहनेका उसका मन हुआ। सोसायटीमें अनजान किरायेदारों तथा पड़ोसियोंके साथ रहना उसे अखरता था। उसने मुझसे यह बात कही और इसीके साथ, शहरमें एक छोटा मकान पंद्रह-सोलह हजारमें मिल रहा है, यह सूचना दी। मैंने इसका पता

लगाया और उधर सोसायटीवाले मकानका ग्राहक भी खोज निकाला। इस मकानकी जितनी कीमत मिली, उतनेमें ही शहरवाला मकान मिल गया। अब वह उमंगके साथ शहरवाले मकानमें आकर रहने लगी। यहाँ भी उसे भाड़ेकी आमदनी ठीक-ठीक होने लगी।

आज वह बहिन साठपर पहुँच गयी है और न्यातजातमें उसकी प्रतिष्ठा पुनः पूर्ववत् होने लगी है। इससे उसको आनन्दका अनुभव होता है। वह कभी-कभी मेरे यहाँ आया करती है और चाय-पानीके बादमें जब उसे संतोषकी डकार लेते देखता हूँ, तब मुझे भी संतोष हुए बिना नहीं रहता।

यह वृत्तान्त एक सेवाभावी और व्यवहारकुशल वृद्ध मित्रने मुझे सुनाया। तब मेरे मुँहसे सहज ही उद्गार निकला—इस मार्ग-भूली बहिनको मानो सचमुच आप भगवान् ही मिल गये।

—चु० व० शाह

आनन्दके आँसू

'हार नहीं मिल रहा है। किसीसे कुछ कहते भी बहुत डर लगता है। अभी तीन ही दिन ससुराल आये हुए हैं, एकदम नयी जगह है। किसी प्रकार भी मन नहीं लग रहा है। रुलाई आ रही है; ससुरालवाले समझते हैं पीहरकी याद आती होगी, इसीसे बहूरानीकी रोनी-सी सूरत हो रही है।'

सुशीला पहले-पहल गौना करवाकर कलकत्ते आयी थी। पढ़ी-लिखी सयानी समझदार है। गहना-कपड़ा बहुत सामान साथ लायी है। ससुरालमें बड़ा आदर-सत्कार हो रहा है। सब ओर प्रसन्नता छायी है। सभी नयी बहूका लाड़-प्यार करते हैं। कलतक बहू भी खूब हँस-खेल रही थी। कल शामसे ही उसके गलेका हीरेका हार नहीं मिल रहा है। हार बहुत कीमती है, पर सुशीलाको कीमतकी उतनी चिन्ता नहीं है। वह अपने पिताजीकी लाड़िली बेटी है, पिताजी उससे भी अधिक मूल्यका हार नया बनवा देंगे और उसको हार खो जानेके बाबत कुछ कहेंगे भी नहीं, पर यह बात तो पिताजीसे मिलनेपर न होगी। अभी तो वह ससुरालमें है। कलको सासको पता लग जाय, वह पूछेगी—'हार कहाँ है?' तो वह क्या उत्तर देगी। इसीसे वह बड़ी परेशान है।

कल दुपहरके बाद वह बहुत-सी समवयस्का स्त्रियोंसे घिरी हुई थी। वे सब बहुत प्यार कर रही थीं। उसके गहने-कपड़े देख रही थीं। उसे खिलाती-पिलाती थीं। सुशीला इस आनन्दोल्लासमें भूली थी। शामको उसने देखा तो गलेमें हार नहीं है। तभीसे वह उदास है।

किसी तरह रात निकली। उसने अपने मानस कष्टकी बात किसीसे नहीं कही। दूसरे दिन प्रातःकालसे ही सुशीलाकी उदासी और बढ़ गयी। मानसिक वेदनाके प्रभावसे उसके सिरमें भयानक दर्द हो गया। इधर आनन्दोत्सवमें लोग मस्त थे, उधर वह अन्दर जाकर सिर पकड़े बिछौनेपर उलटी पड़ गयी। बड़ा भय था, अभी बात खुल जायगी तो मुझे लोग क्या कहेंगे।

इसके कुछ ही देर बाद 'सागरमल ब्राह्मणकी पत्नी' नामसे ख्यात एक ब्राह्मणी आयी। वह घरमें बराबर आया करती थी। सबके साथ उसका सद्भाव था। बहुत गरीब थी, पर थी बड़ी ही नेक और हँसमुख। वह सीधी नयी बहूकी कमरेमें चली गयी। बहू तो सिर पकड़े पड़ी थी। ब्राह्मणीने उससे पूछा तो वह इतना ही कह सकी कि 'सिरमें बड़ी पीड़ा है।' ब्राह्मणीने अपनी अँगियामेंसे एक हार निकालकर बहूसे कहा—'बहू! तेरा सिर तो दुःखता है, पर मैं कामसे आयी हूँ। कल जब तूने नहानेके समय शामको कपड़े-गहने उतारकर रखे थे, उस समय तेरा हार तो बाहर नहीं रह गया था न? सीढ़ियोंमें एक हार कूड़ेके साथ पड़ा था। मैं जब जा रही थी तो मैंने देखा और उठा लिया। कल तेरे गलेमें मैंने ऐसा हार देखा था। अतः मैं उसी समय यहाँ आ रही थी। पर घरसे लड़की बुलाने आ गयी। उसके पिताजीको ज्वर हो गया था, इससे मैं चली गयी·····।' एक ही श्वासमें ब्राह्मणी इतनी बात कह गयी। सुशीला तो हारका नाम सुनते ही अकस्मात् उठ बैठी। उसके सिरका दर्द जाता रहा और ब्राह्मणीकी बात पूरी होनेके पहले ही वह बोल उठी—'बाईजी! कहाँ है वह हार?' ब्राह्मणीने हार उसके हाथपर रख दिया। अब

तो सुशीलाके आनन्दका पार नहीं रहा। उसके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु आ गये। घरमें हार खोनेकी बातका सुशीलाके सिवा किसीको भी अबतक पता ही नहीं था। इसी बीच ब्राह्मणीने हार लाकर सुशीलाको दे दिया। सुशीला इसके इनाममें उसे क्या दे? वह पैर पकड़कर रोने लगी। कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये उसके पास शब्द नहीं थे। कुछ समय बाद आश्वस्त होनेपर सुशीलाने अपनी हालत सुनायी और पाँच हजारके नोट लाकर ब्राह्मणीके चरणोंपर रख दिये। ब्राह्मणीने बड़े आदर-स्नेहसे नोट वापस करते हुए कहा—'मुझे तो पता भी नहीं था कि तेरा हार गिर गया है। सब लोग आनन्दोल्लासमें थे। तुझे भी पता नहीं था। हार कहीं नीचे गिर गया होगा और कूड़ेके साथ नौकरने उसे गिरा दिया। बड़ा अच्छा हुआ, भगवान्‌ने कृपा की जो मैंने देख लिया अब तेरी खुशी देखकर ही मैं तो निहाल हो गयी। मुझे भारी इनाम मिल गया । फिर इसमें इनामका काम ही क्या है? दूसरेकी चीजपर मन चलाना बेईमानी है और दण्ड पानेका काम है। दूसरेकी चीज उसको दे देना तो सहज कर्तव्य है। फिर इसमें तो तुझको इतनी प्रसन्न देखनेका बड़ा पुरस्कार मुझे मिल गया है। सुशीला गद्‌गद हो गयी। ब्राह्मणी भी आनन्दाश्रु बहाने लगी!

—गिरधारीलाल

कर्मवीर जोला

एमील जोला (१८४०—१९०२) फ्रांसके प्रथम श्रेणीके उपन्यासकारोंमें माने जाते हैं। उनका प्रारम्भिक जीवन बड़ी दरिद्रावस्थामें कटा। 'ला एसोमा' नामक उनके उपन्यासके छपते ही उनपर चारों ओरसे धन और यशकी वर्षा होने लगी और उनकी गणना फ्रांसके प्रमुख नागरिकोंमें होने लगी, परंतु जोलाको समारोह एवं सार्वजनिक जीवनमें कोई रुचि नहीं थी। वे एकान्तमें बैठकर साधना करनेवाले साहित्यसेवी थे। एक बार ऐसा हुआ कि उनकी कुम्भकर्णी निद्रा भंग हुई और उन्हें खुलकर सार्वजनिक जीवनमें भाग लेना पड़ा।

ऐसा हुआ कि १८९४में फ्रांसके कुछ गोपनीय सैनिक तथा उसके प्रधान शत्रु जर्मनीके हाथ लग गये। सन्देह ड्रेफस नामक एक तोपखानेके यहूदी कप्तानपर हुआ। ड्रेफसका कोर्टमार्शल हुआ और उन्हें आजीवन कालेपानीका दण्ड मिला। फ्रांस उन दिनों अपने कालेपानीके दण्डितोंको डेबिलके द्वीपमें भेजा करता था, जहाँकी भयानक गरमी सहन न कर सकनेके कारण बन्दी कुछ वर्षोंमें ही तड़फ-तड़फकर मर जाते थे।

फ्रांसके कुछ साहित्यिकोंका विश्वास था कि ड्रेफस निर्दोष है, परन्तु म्याऊँका ठौर कौन पकड़े। राज्य, अधिकारी और जनता तीनों ही बुरी प्रकारसे उत्तेजित थे। जिस समय ड्रेफसका कोर्टमार्शल हो रहा था, उस समय जनता अदालतके बाहर चीख-चीखकर चिल्ला रही थी, 'देशद्रोहीको प्राणदण्ड,' 'यह यहूदी है,' 'यहूदी विश्वासघाती होते हैं' इत्यादि-इत्यादि। ऐसे

विकट समयमें जोला कमर कसकर न्यायकी रक्षाके लिये कूद पड़े। उनके आन्दोलनसे प्रभावित होकर एक उच्च सैनिक अधिकारी मेजर पिकार्ट चुपचाप गुप्तरूपसे मामलेकी छान-बीन करने लगे और इस निष्कर्षपर पहुँचे कि ड्रेफस निर्दोष है। असली अपराधी मेजर एस्टरेजी नामका एक उच्च अधिकारी है। फलतः एस्टरेजीका कोर्टमार्शल हुआ, परन्तु धन एवं सत्ताके बलपर वह निर्दोष छोड़ दिया गया और फ्रांसीसी जनताने कचहरीमें ही गगनभेदी नारे लगाये, 'एस्टरेजी जिन्दाबाद,' 'फ्रांस अमर है,' 'यहूदियोंका नाश हो,' 'देशद्रोहियोंका मुँह काला'।

जोलाने सुना तो तड़पकर रह गये। दो दिन बाद ही १३ जनवरी सन् १८९८ को पेरिससे निकलनेवाले 'ला आरोरे' नामक समाचार-पत्रमें उनका 'सम्पादकके नाम पत्र-स्तम्भ'में एक पत्र छपा, जो फ्रेंच-साहित्यमें एक अमर स्थान रखता है। जिसने भी उस पत्रको पढ़ा, तड़प उठा। फलतः जोलापर मानहानिका अभियोग चला। वे दण्डित हुए; परन्तु अपीलमें छूट गये। छूटते ही दूसरा अभियोग चला और लक्षण ऐसे थे कि अबकी बार जोलाको कठोर दण्ड मिलेगा और अपीलमें भी वे नहीं छूट सकेंगे। फलतः मित्रोंके सुझावके अनुसार वे फ्रांस छोड़कर भाग गये और वर्षसे भी ऊपर समयतक इंग्लैंडमें ठोकरें खाते फिरते रहे। फ्रांसकी सरकारने उनका नाम सम्मानित व्यक्तियोंकी सूचीसे काट दिया; परंतु जोला विचलित नहीं हुए। वे परदेशसे बराबर आन्दोलन चलाते रहे। अन्ततः फ्रांस-सरकारको झुकना पड़ा। जोलाके विरुद्ध अभियोग वापस लिये गये और वे ४ जून १८९९ को फिर अपनी जन्मभूमिको लौटे।

एक दूसरा कोर्टमार्शल बैठा, जिसने ड्रेफसको बंदी-गृहसे मुक्त किया। उन्हें न केवल सेनामें अपना पुराना पद फिर मिला, बल्कि उनकी पदोन्नति भी की गयी। एस्टरेजी दण्डित किया गया और जिन अधिकारियोंने ड्रेफसके विरुद्ध जाल रचा था, वे सब अपने पदसे पृथक् किये गये।

इस कठोर परिणामके कारण जोलाकी मृत्यु २९ सितम्बर सन् १९०२ को हो गयी।

—श्रीराजेन्द्रप्रसाद जैन, तिस्सा

अशिक्षित; किन्तु सुसंस्कृत

ग्रीष्मकी जलती दोपहरीमें धूलिका बवंडर उड़ाती एस० टी० बस मानो दौड़कर थक गयी हो तथा असह्य तापसे संत्रस्त हो गयी हो, इस प्रकार कोड़ियाखाड़ गाँवके समीप नीमकी शीतल छायामें एक भारी फूत्कार छोड़कर ऐसे खड़ी हो गयी, जैसे थकावट उतारने खड़ी हुई हो।

इस बसके आनेकी प्रतीक्षामें ही खड़ा हो, इस प्रकार एक मनुष्य वहाँ स्वच्छ चमकते प्याले तथा शीतल जलका डोल लिये पहिलेसे खड़ा था। बसके रुकते ही प्यास तथा गरमीसे व्याकुल यात्री पानीकी माँग करने लगे। वह पानी पिलानेवाला व्यक्ति पहिलेसे ही इस परिस्थितिसे परिचित हो, इस प्रकार शान्त था और जितनी शीघ्रता सम्भव थी, उस शीघ्रता तथा तत्परतासे पानी पिला रहा था। वह इसलिये दौड़-धूप कर रहा था कि बसमें ठंडा पानी पिये बिना कोई छूट न जाय।

सदाकी रीतिके अनुसार कुछ यात्री पानी पीनेके पश्चात् पानी पिलानेवालेको कुछ सिक्के देने लगे; किन्तु उसने नम्रतापूर्वक कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया। यह देखकर मैं विचारमें पड़ गया। असह्य महँगाईके इस जमानेमें थोड़ा-सा काम करके बदलेमें बहुत पानेकी आशा करनेवाले लोगोंकी कमी नहीं है। ऐसी अवस्थामें श्रमका बदला मिलता हो, उसे भी लेना अस्वीकार करनेवाले इस मनुष्यका व्यवहार आश्चर्यजनक था। इसलिये यात्री जो कुछ प्रसन्नतासे दे रहे हैं, उसे ले लेनेकी सलाह मैंने उसे दी।

मुझे उस पानी पिलानेवालेने उत्तर दिया—'साहब! मैं, मेरी पत्नी और एक कन्या—ये केवल तीन सदस्य मेरे परिवारमें हैं। मैं ग्राम-पंचायतमें चपरासीका काम करता हूँ। उससे हम तीनोंका भरण-पोषण हो, इतना मुझे मिल जाता है। अब अधिक पानेका लोभ मुझे किसलिये करना चाहिये?'

इस बातचीतके समयमें मानो मोटरकी थकावट दूर हो गयी हो, इस प्रकार वह दौड़ने लगी। पानी पिलानेवाला भी दोनों हाथ जोड़कर ऐसे खड़ा रहा, जैसे यात्रियोंकी विदाई कर रहा हो, उसके सम्बन्धमें मुझे अधिक जाननेकी उत्कण्ठा थी। बसमें बैठे यात्रियोंसे पूछनेपर एकने बताया कि पिछले पाँच वर्षसे बिना किसी वेतनके केवल आत्मसंतोषके लिये ये भाई पानी पिला रहे हैं। इनका यह प्याऊ रात-दिन चलता है। दोपहरको बस आनेके समय तो वे अवश्य उपस्थित रहते हैं।

यह सुनकर केवल सेवामें संतोष माननेवाले, सेवाव्रती, अयाचक, अपरिग्रहव्रती, ग्रामीण, अशिक्षित, किन्तु सुसंस्कृत मानवकी मैंने मन-ही-मन वन्दना की। (अखण्ड आनन्द)

—मणिभाई आर० सोलंकी

कृपालुकी असीम माया

दिसम्बर ६२ की बात है। छुट्टियोंके दिन थे। मैं अपने घरके स्त्री-बच्चोंके साथ विश्वविख्यात 'जोगफाल्स' देखने गया। 'जोगफाल्स' प्रकृतिनिर्मित भू-स्वर्ग है। यहाँ शरावती नदी शरवेग-गामिनी बनकर ९०० (नौ सौ) फुट ऊँचाईके एक पहाड़से नीचे गिरती है। प्रकृति माताकी इस अनुपम सौन्दर्य-सुधाका पान करनेके लिये देश-विदेशके सैकड़ों यात्री यहाँ आते रहते हैं। हमलोग सागर (जोगफाल्ससे २२ मील दूरपर स्थित एक छोटा-सा आबादीवाला शहर)-से निकलकर बसद्वारा दुपहरको जोगफाल्स पहुँचे। वहाँके दर्शनीय स्थानोंको देखते-देखते रात हो गयी। वापस लौटनेके लिये कोई सवारी-वाहन न मिलनेके कारण हमें रातको वहीं ठहरना पड़ा।

क्रिसमसके दिन थे। यात्रियोंसे स्थान भरा था। हमने बहुत देरतक होटलोंमें तथा अतिथि-भवनोंमें जगहकी तलाश की; पर हमें ठहरनेके लिये कहीं जगह नहीं मिली। हम बड़ी परेशानीमें पड़ गये। हमारे साथ सिर्फ बच्चे और औरतें थीं। रातभर निराश्रित बनकर रास्तेपर पड़े रहकर बिताना था।

रातके ११ बज गये। हम सब अत्यन्त निराश-उदास हो गये। ठंड बहुत लग रही थी। शहरसे अलग फाल्सके नजदीक एक सरकारी विशाल अतिथिशाला थी। जब हम अत्यन्त ही निराश तथा उदास होकर आखिरी आशासे वहाँ पहुँचे तो दरवाजे सब बन्द थे और बाहर आँगनमें भी बहुत लोग सो रहे थे। हमारे पास बिछौना भी नहीं था। किसी प्रकार रास्तेके किनारे बैठे-

बैठे जागरण करनेकी नौबत आ गयी। इधर-उधर भटकने-फिरनेसे हाथ-पैर थक गये। बच्चे रो रहे थे। इस करुणामय स्थितिमें एक ओर बैठकर मैं मन लगाकर भगवान्‌से प्रार्थना करने लगा। '**अनाथो देवरक्षितः**'। उस प्रभुकी लीलाको कौन जान सकता है। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि एक सज्जन मोटरसे उतरकर हमारे पास आये और उन्होंने हमारी सारी हालत सुनी। तदनन्तर वे हमलोगोंको अपनी मोटरमें बिठाकर बड़ी उदारतासे अपने भवन ले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने हम सबकी कितने सदाग्रहसे अतिथि-सेवा की, इसे लिखनेमें मैं बिलकुल असमर्थ हूँ। उन्होंने हमारा स्नेहपूर्ण हृदयसे ऐसा आदर-सत्कार किया, मानो हमलोग उनके कोई खास आदरणीय आत्मीय हों।

पूछनेपर मालूम हुआ कि वे सद्‌गृहस्थ उस शहरके होटलसंघके मालिक हैं तथा एक बड़ा होटल स्वयं चला रहे हैं।

निश्चय ही भगवान्‌की अहैतुकी कृपा अति विस्मयकारी है। पर साथ ही उन गृहस्थका यह बर्ताव कितना आदर्श और अनुकरण करनेयोग्य है। हमलोग निराश्रय-से थे, उनसे अपरिचित थे, हमारी उनसे कोई माँग भी नहीं थी; उन्होंने स्वयं आकर हमें आश्रय-दान दिया। उनकी इस सहृदयताका अनुकरण करनेसे बहुतोंको सुखी किया जा सकता है।

—एल० टी० गणपति एम० एल० हल्लि (सागर)

जिसका है उसीको मिलना चाहिये

बसो निवासी स्व० भाईलाल भाई व्यासके जीवनके ये दो प्रसंग हैं—

एक समय वे सूरतसे कोई प्रदर्शनी देखने बड़ौदा गये थे। वहाँसे लौटते समय समाचार मिला कि अहमदाबादसे मेल ट्रेन खचाखच भरी आ रही है, इसलिये सूरतकी टिकट नहीं मिलेगी। इसी मेल ट्रेनसे उन्हें सूरत अवश्य लौटना था, अतः जो भी परिणाम हो सकता था। (बिना टिकट ट्रेनमें चलनेका) उसका पूरा विचार करके वे मेलमें बैठ गये। सूरतमें उन्हें किसीने रोका नहीं, वे सुविधापूर्वक घर पहुँच गये। तब क्या उन्होंने टिकटकी चोरी की? नहीं। उन्होंने दूसरे दिन सबेरे उठकर पहला काम यह किया कि स्टेशन गये और सूरतसे बड़ौदाका टिकट लेकर उसे फाड़कर फेंक दिया।

उनसे जब पूछा गया कि टिकटके जो पैसे बचे थे, उनसे किसी संस्थाकी सहायता करनेके बदले सामान्य दृष्टिसे अटपटा लगनेवाला यह कार्य आपने क्यों किया? तो उन्होंने बताया—'जिसका जो अधिकार है, उसीको मिलना चाहिये। रेलवेका पैसा मेरेपर ऋण निकला। वह मुझे एक या दूसरी किसी भी रीतिसे उसे लौटाना चाहिये था। मैं किसी संस्थाकी सहायता इससे कैसे कर सकता था। ऐसा करनेकी सम्मति मुझे रेलवे अधिकारियोंने तो दी नहीं थी। इस प्रकार एकका धन उसकी सम्मतिके बिना दूसरेको देकर मैं दुगुने पापका भागी बना होता ।'

* * * *

एक बार उनके बड़े पुत्रने उनके छोटे पुत्र (अपने छोटे भाई)-को कार्ड लिखा। छोटे पुत्रने कार्ड पढ़ा, उसे लगा कि यह पत्र पिताजी भी पढ़ लें तो अच्छा। इसलिये उसने अपने नामको रखकर शेष पता काट दिया और अपने पिताजीका नाम-पता नीचे लिख दिया। जैसे वह अपने पिताके पास हो और कार्ड उसे उस पतेपर मिलनेवाला हो। यह करके कार्ड उसने डाकमें डाल दिया। ऐसा करनेका उसका तात्पर्य यह था कि उसे दूसरा पोस्टकार्ड खर्च न करना पड़े और पिताजी यह सब समाचार जान लें।

श्रीभाईलाल भाई व्यासजीको जैसे ही यह कार्ड मिला, उन्होंने पता देखा और तुरन्त कार्डके मूल्यका टिकट पोस्ट-आफिससे खरीदकर उन्होंने फाड़ दिया। फिर उन्होंने अपने पुत्रको लिखा—'तुमने जो पोस्टकार्ड भेजा, वह मुझे मिल गया। लेकिन अब कभी आगे ऐसा मत करना। ऐसा करना पोस्टकार्डकी चोरी कही जाती है। मैंने पोस्टकार्डके मूल्यका टिकट लेकर फाड़ दिया है। मुझे यह कार्ड पढ़नेके लिये भेजनेकी इच्छा ही थी तो दूसरे कार्डपर उसकी प्रतिलिपि करके अथवा कार्डको लिफाफेमें डालकर तुम भेज सकते थे। इसलिये अब ध्यान रखना फिर ऐसी भूल न हो?'

(अखण्ड आनन्द)

—लल्लूभाई ब० पटेल

गो-रोगनाशक मन्त्र और दवा

सेवामें गोमाताके लिये सिद्ध साबर-मन्त्र लिखकर भेज रहा हूँ, आशा है उपकारार्थ अपने 'कल्याण'में प्रकाशित करेंगे— मन्त्रमें जरा भी हेर-फेर नहीं करके अविकल छाप देना चाहिये—

मन्त्र—

ॐ पर्वत ऊपर परसी गाँव तहाँ बसैं पहलू पाँडे नाँव, पहलू पाँडेके सात पुत्र खँगा खोरा उरका घुरका घुमरी छाव छय— एठाईं दोहाई पहलू पाँडेकै जोई दुख रहे तो तोहराँके पाप होय॥

विधि—इस मन्त्रको रविवारके सूर्योदयके पहले तोड़े हुए पीपलके पत्तेपर काली स्याही और कलम (देशी कलम नरकट या सरहरीकी, लोहेकी कलमसे नहीं)-से लिखकर गूगुलका धूप देना, पश्चात् गायके बायें और बैलके दाहिने सींगमें श्वेत वस्त्रमें लपेटकर बाँध देना—इससे गाय, भैंस, भेड़-बकरी इत्यादि सभी जानवरोंकी बीमारी दूर हो जाती है।

दूध बिगड़ने (खून-सरीखे दूध निकलने) जानवरों (गाय-भैंसों)-के दूध निकालते समय कूदने-छटकने-मारनेको दौड़ने इत्यादि रोगोंके लिये एक विचित्र गुणकारी औषधि (जड़ी) है, जो नैपालकी तराईके जिलों (गोरखपुर, बस्ती, चम्पारन इत्यादि)-में मिलती है। उस जड़ीका एक टुकड़ा दतुअँन-सरीखा एक इंचका लेकर धूप देकर दूध देनेवाली गाय-भैंसोंकी सींगमें बाँधनसे जानवर कुछ देरमें ही अच्छा हो जाता है। उस जड़ीका नाम 'गँभार' है। आम-महुआ-सरीखा पेड़ होता है। इसका पत्ता पान-सरीखा होता है। देहातके लोग इस जड़ीको अच्छी तरहसे जानते हैं।

—शिवचैतन्य ब्रह्मचारी, महेश्वर (नेमाड़)

बिच्छूकी सिद्धौषध

जिस जगह बिच्छू काटा हो, उस जगहपर दो तोले गुड़में आधा तोला नमक, एक रत्ती फिटकरी और एक रत्ती पोटैशियम परमैगनेट मिलाकर बाँध देनेसे कुछ देरमें जहर उतर जाता है। हमने बहुत लोगोंपर प्रयोग करके देख लिया है। अनुभवका अनादर ही अज्ञान है।

—पां० भी० देयरड्डि, कब्बूर (वेलगाँव)

पितृ-ऋणशोधका आदर्श कार्य

कुछ वर्षोंकी घटना है। सम्मान्य श्री·····अग्रवाल··· स्थानके निवासी हैं। आप ईश्वरके परम (भक्त) एवं माननीय गुणोंसे परिपूर्ण हैं। शरीरसे एकदम अपंग हैं। आपका अधिकतर समय सत्संग एवं गुरुजनोंकी सेवामें ही व्यतीत होता है। आपकी उम्र इक्यावन वर्षोंकी हो चुकी है।

आपके पिता श्री...... के हाथका तैंतालीस वर्ष पहलेका ऋण परिस्थिति प्रतिकूल होनेके कारण शोध नहीं हो सका था। पिताका देहावसान बाईस वर्ष पूर्व हुआ था।

तबसे आप बराबर ईश्वरसे ऋण-मुक्तिके लिये प्रार्थना करते रहते थे। इनकी अन्तकी सच्ची करुणतम पुकार भगवान्के हृदय-पटलपर प्रतिध्वनित हो उठी। आर्थिक स्थिति संतोषजनक न होनेपर भी हृदयकी उच्चताने गरिमाका परिचय दिया और एक छोटेसे व्यापारमें कुछ सफलता पाते ही आपने सभी ऋणदाताओंको एकत्र करके हजारों रुपये नकद देकर उनसे ऋण-मुक्ति-पत्र प्राप्त किये। ऋण-मुक्ति-पत्र-दाताओंने भूरि-भूरि प्रशंसा करके इनके इस महान् आदर्श कार्यका गौरव बढ़ाया। ऋण पुराना होनेके कारण कुछ लोग तो भूल ही गये थे और कुछ अनभिज्ञ थे। परंतु उनको यथोचित सम्मानके साथ ऋण चुकाकर आप पितृ-ऋणसे मुक्त हुए। धन्य है। आज भी भू-मण्डलपर ऐसे व्यक्ति हैं। ऋण-मुक्तिका सारा कार्य मेरी उपस्थितिमें ही हुआ था।

इन महानुभावने इस विषयको अप्रकाशित ही रखनेकी इच्छा प्रकट की थी। मेरे इस आग्रहपर कि इस प्रकारके आदर्श कार्यको छिपे रहनेपर लोग इसका अनुकरण कैसे कर सकते हैं, आपने संकोचके साथ अनुमति दी।*

—गोपालकृष्ण अग्रवाल

* घटना सर्वथा सत्य है, नाम तथा रुपयोंकी संख्या जान-बूझकर नहीं छापी गयी है।

पैतृक धंधेमें लज्जा कैसी ?

आजकल प्राय: प्रत्येक विद्यार्थी कॉलेजमें अध्ययन करके निकलता है तो वह अपने माता-पिताके काममें मदद करनेमें अप्रतिष्ठा (नामूसी)-का अनुभव करता है, उसे इससे अपने मित्रोंमें नीचा दीखनेका डर लगा रहता है। इससे सर्वथा विरुद्ध एक उदाहरण देखनेको मिला। एक दिन संध्याके समय मैं बड़ोदामें सूरसागर तालाबके पास पुस्तकें खरीदने गया था। वहीं सूरसागरके सामने एक हेयर कटिंग सैलून (नाई-घर)-में जाकर हजामत बनवाने बैठा। एक प्रौढ़ उम्रके मनुष्यने मेरे बाल काटने शुरू किये। कुछ ही देर बाद एक सूट-बूटधारी युवक वहाँ आया।

उसने कहा—'लाओ बापूजी, इन भाईका बाल मैं बना दूँ।' उसने मेरे बाल बनाने आरम्भ किये। बाल काटते-काटते उसने पूछा—

'आप प्रि-साइन्समें अध्ययन कर रहे हैं न?'

मैंने सहज ही प्रश्न किया—'आपको कैसे पता लगा?'

'मैंने आपको 'प्रि' युनिटके मकानके पास कई बार देखा है!'

मैं असमंजसमें पड़ गया। मैंने पूछा—'आप कॉलेजमें क्या करते हैं?'

नम्रतापूर्ण उत्तर मिला, 'जी! मैं इंजीनियरिंगके अन्तिम वर्षमें अध्ययन कर रहा हूँ।'

'हैं!' मैं तो आश्चर्यचकित हो गया। 'क्या आप इंजीनियरिंगके अन्तिम वर्षमें अध्ययन करते हैं?'

मैं विचारोंके जालमें फँस गया और यह पूछ बैठा—'आप इतना ऊँचा अध्ययन करते हैं, फिर इस हजामत-जैसा काम करनेमें आपको लज्जा नहीं आती? आपके मित्र क्या आपकी दिल्लगी नहीं उड़ाते?'

युवकने स्वस्थता और नम्रतासे उत्तर दिया—'अपने पुश्तैनी धंधेमें लज्जा कैसी? हमारे वंशपरम्परागत कामको हम कैसे भुला दें? मैं तो बचपनसे ही पढ़ाईके साथ-साथ यहाँ भी काम करता हूँ! फिर यहाँतक पहुँचना भी हुआ किसके प्रतापसे? जिन माता-पिताने परिश्रम करके हमको इतनी ऊँची पढ़ाई करानेका कष्ट सहा, तनतोड़ मेहनत करके हमको इतने ऊँचेपर पहुँचाया, क्या उनका ऋण हमें भूल जाना चाहिये? क्या उनके काममें सहयोग नहीं देना चाहिये!'

इन प्रश्नोंका मेरे पास कोई उत्तर नहीं था। बाल बन गये थे, मैं पैसे देकर चलने लगा। चलते समय उस सुपुत्रके (युवकको अब मुझे सुपुत्र ही कहना चाहिये) अन्तिम शब्द मेरे कानोंमें गूँज रहे थे। मेरे मनमें उसके प्रति मानकी भावना उदय हो गयी थी।

(अखण्ड आनन्द)

—सुभाष एस० पटेल

दो विदेशी महानुभावोंकी आदर्श सुहृदता

घटना २३ फरवरी १९६३, शनिवारकी है।

कॉलेजसे आकर सो गया और चार बजे सायंकाल उठा। अचानक यह विचार उत्पन्न हुआ कि घर चला जाय। साढ़े चार बजेसे चलना प्रारम्भ किया। मेरा ग्राम भोपालसे १४ मील दूर दक्षिणमें स्थित है। कभी-कभी मैं साइकिलसे ही घर चला जाया करता हूँ।

एक छोटी-सी बदली उठी और रिमझिम वर्षा होने लगी। पाँच-सात मिनटतक इसी अवस्थामें साइकिल चलाता गया; किंतु फिर अधिक वर्षा होनेके कारण मुझे एक वृक्षकी छायाका सहारा लेना पड़ा। ५.१५ बजेसे ५.४५ बजेतक खड़ा रहना पड़ा।

पुनः चलना प्रारम्भ किया, किन्तु अबकी बार यात्रामें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। गाड़ीके दोनों ओरके मडगाटोंमें मिट्टी भर जाने और फिर उसको निकालनेका क्रम एक घंटेतक यानी ५.४५ बजेसे ६.४५ बजेतक चलता रहा और मुश्किलसे मैं दो फर्लांग रास्ता तय कर सका।

बहुत अधिक थक चुका था। बहुत परेशान भी था। घबराकर मैंने साइकिलको बैलगाड़ीके रास्तेसे उठाकर चरागाह-स्थित एक सघन झाड़ीमें पटककर चलनेका विचार किया, किंतु आन्तरिक भावनाने इस विचारको क्रियात्मक रूप नहीं देने दिया। भाग्यसे उस दिन कोई भी बैलगाड़ी उस रास्तेमें मेरी ओरकी ही नहीं, बल्कि किसी भी ओरकी नहीं मिली।

अब मेरा वही हाल था जो एक धोबीके कुत्तेका होता है;

क्योंकि पिछला गाँव एक मील पीछे रह गया था और आगे आनेवाला गाँव भी दो मील दूर था। उस समय अँधेरा भी अधिक हो गया था। जब व्यक्ति सब ओरसे निराश हो जाता है, तब एकमात्र भगवान्‌की शरण याद आती है। मैं मन-ही-मन भगवान्‌से प्रार्थना कर रहा था—'हे भगवन्! अब तो किसी भी प्रकार आपको मेरी नैया पार लगानी पड़ेगी, मैं आपकी शरण हूँ।'

अचानक मैंने कुछ क्षण पश्चात् मोटरकी रोशनी देखी और फिर घरघराहटकी आवाज भी सुनी। पहले ये सब मुझे स्वप्नमात्र लगे, किंतु तुरंत ही एक जीप बहुत पास आती दिखायी दी, शायद करुणासागरने मेरी करुण पुकार सुन ली थी।

मैं वहीं उस चारागाहमें स्थित झाड़ीके पाससे भगा और मैंने जीप रुकवानेका प्रयास किया। हाथ उठाकर जोरसे चिल्लाया—'रोकना! रोकना! रोकना!' जीपकी घरघराहटमें मेरी आवाज दब गयी, किन्तु ड्राइवरने मुझे भागता देखकर आगे चलकर गाड़ी रोक दी। ड्राइवरने प्रश्न किया—'क्या है? क्या है?'

मैंने सारी घटना सुना दी। बेचारे ड्राइवर महोदय स्वयं गाड़ीसे उतरे और मेरी साइकिल उठाकर जीपमें रखने लगे। साइकिल बहुत भारी हो गयी थी, इसलिये उसका एक भाग मुझे पकड़ना पड़ा, तब कहीं दूसरा भाग उन्होंने पकड़कर जीपमें रखा।

गाड़ी स्टार्ट हुई। रास्तेमें आगे और भी बहुत वर्षा हुई थी। ड्राइवरके पास ही उनके एक साथी भी बैठे हुए थे। उन्होंने मेरे बारेमें सारी जानकारी प्राप्त की और मैंने भी उनके बारेमें।

ये दोनों सज्जन शिकार खेलनेके लिये जा रहे थे। अगला गाँव आया। उस समय रातके ७ बजकर २० मिनट हुए थे। उन्होंने मुझसे पूछा—'अब क्या करोगे!' यह इसलिये पूछा कि मेरा गाँव अब भी यहाँसे आधा मील था। इनको इसी ग्रामके पाससे होकर जाना था। उत्तरमें मैंने कहा—'मैं यह गाड़ी किसी भी परिचित व्यक्तिके घर रखकर पैदल घर चला जाऊँगा।' पुनः प्रश्न हुआ—'तुम डरोगे तो नहीं!' उत्तर दिया—'नहीं सर!'

ड्राइवरके साथी महोदयने ड्राइवरसे कहा—'शिकारको फिर चलेंगे, चलो इनको पहले घर पहुँचा दें, बच्चा है डर लगेगा' आदि।'

मैंने निवेदन किया—'नहीं सर! अब मैं चला जाऊँगा।' उन्होंने कहा—'आप बैठकर हमको अपने गाँवका रास्ता दिखलावें।' ७.३० बजे मेरे गाँवमें जीप पहुँची। ड्राइवर महोदयने साइकिल जीपसे नीचे उतारनेमें सहायता प्रदान की।

ये मुझे छोड़कर जानेके लिये तैयार हो गये। मेरे अत्यधिक आग्रह करनेपर चाय पीना स्वीकार किया। इस बीच पिताजीने इनके प्रति आभार प्रकट किया, किन्तु पिताजी अंग्रेजी नहीं जानते थे, इसलिये उनकी बातें उन महोदयोंकी समझमें नहीं आयीं। हमने भोजनका भी आग्रह किया, किन्तु उन सज्जनोंने स्वीकार नहीं किया। रात्रि-विश्रामके लिये कहा, किन्तु वह प्रस्ताव भी उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

विदा लेते हुए मैंने बहुत शुक्रिया अदा किया, किन्तु उनके शब्द थे—'संकटमें पड़े हुएकी सेवा करना मनुष्यमात्रका प्रथम कर्तव्य है। हमने अपना कर्तव्य निभाया है, कोई बड़ी बात नहीं

की।' इन दोनों सज्जनोंके नाम हैं—(१) डेविड विलियम—जो ड्राइविंग कर रहे थे और (२) हरवर्ट पोपलेण्ड—जो ड्राइवरके साथी थे। दोनों महानुभाव अंग्रेज हैं। भोपालस्थित एच० ई० एल० में सर्विस करते हैं और इंग्लैण्डसे आये हुए हैं।

स्मरण रहे इनके साथ सारी बातें अंग्रेजीमें हुईं, क्योंकि ये हिंदी नहीं जानते थे। जब मुझे यह घटना याद आती है, तब वह दृश्य आँखोंके सामने नाच उठता है और दिल यह कह उठता है—धन्य है ऐसे परोपकारी सज्जनोंको और उनके नेक विचारोंको। हमें इनसे सीखना चाहिये।

—लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव,

ग्राम—बन्दोर्ण

चिथड़ेमें छिपे लाल

सिरपर काँच या पीतलके बरतनोंकी टोकरी लिये कुछ फेरीवाले पुरुष और स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ आवाज लगाते घूमा करते हैं और वे पुराने जरी-कामके कपड़े, गोटा-किनारी आदि खरीदा करते हैं अथवा उन्हें लेकर बदलेमें बरतन दिया करते हैं। कई बार ये फेरीवाले धोखा भी दे जाते हैं।

एक दिन हमारे एक दूरकी सम्बन्धी माताजी गलीमें बालकोंको खिला रही थीं, वहाँ उन्हें ऐसे ही एक फेरीवालेकी आवाज सुनायी दी। माताजीके पास कुछ पुरानी फैशनके कपड़े पड़े थे। घरमें आजकल उन्हें कोई भी पहनता न था। अत: माताजीने सोचा, इन कपड़ोंको देकर बदलेमें कोई बरतन ले लिया जाय। इन उद्देश्यसे उन्होंने फेरीवालेको बुलाया। फेरीवालेके आनेपर माताजी घरमें गयीं और पिटारीमेंसे एक पुरानी जरी-कामकी साड़ी निकालकर लायीं। फेरीवालेने कुछ देरतक साड़ीको देखा और उसपर हाथ फेरता रहा। फिर माताजीके हाथोंपर रखकर वह चल दिया। माताजीको साड़ीके बदलेमें कुछ बरतन मिलनेकी आशा थी। अतएव उनको आश्चर्य हुआ और उन्होंने फेरीवालेसे पूछा—'क्यों भाई! तू कुछ भी नहीं बोलता, क्या यह साड़ी एकदम फेंक देने लायक है?'

फेरीवालेने घूमकर गम्भीर स्वरमें कहा—'माँजी! साड़ी एकदम ठीक है, इसके तार असली सोनेके हैं, इस साड़ीके सहज ही पचीस-तीस रुपये उठने चाहिये। मेरे पास पैसे थे नहीं, इसीसे मैं बिना कुछ कहे यह विचारकर लौट चला था कि

अबकी बार पैसे लेकर आऊँगा तब माँजीसे साड़ी खरीद लूँगा।'

माताजीको फेरीवालेकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। फिर उन्होंने बाजारमें जाँच करवायी तो फेरीवालेकी बात सच निकली। माताजीने शामको जब यह बात बतायी, तब हम लोगोंके मनमें आया कि धरतीने अभीतक अपना सारा नूर नहीं खो दिया है। सम्भव है, फेरीवालोंमें ठगोंकी संख्या अधिक हो तथापि कहीं-कहीं कोने-किनारे अब भी ऐसे चिथड़ेमें छिपे लाल—रत्न मिलने दुर्लभ नहीं हैं।　　　　(अखण्ड आनन्द)

—बी० जे० कापड़ी

बसयात्रा और एक फरिश्ता

कोई रातके सवा दस बजे होंगे। मैं अपने डेढ़ वर्षीय पुत्रको गोदमें लिये दिल्ली गेटके बस-स्टापपर खड़ा बसका इंतजार कर रहा था। सर्दीके दिन थे। जनवरी मासकी सर्दी! शीतकी लहर अपना रंग अच्छी तरह दिखला रही थी। बसका काफी देर इंतजार कर कुछ लोग तो स्कूटर-टैक्सी इत्यादिके द्वारा गन्तव्य स्थानको चल पड़े। अब मैं बस-स्टापपर अकेला था। सोच ही रहा था कि बस न मिली तो टैक्सीके पैसे खर्चने पड़ेंगे। इधर गोदमें नन्हा बालक सर्दीसे ठिठुर-ठिठुरकर मुझे टैक्सी कर लेनेकी बार-बार प्रेरणा दे रहा था। मुझे पुत्र और पतिकी बाट जोहती गृहिणीका खयाल आता तो और भी हृदय घबरा उठता। अन्तमें मैंने टैक्सी कर लेनेका निश्चय कर ही लिया, परन्तु सम्भवतः दैवको इस अविस्मरणीय घटनाको मेरे जीवनकी समस्त घटनाओंमें प्रमुखता देनी थी, इसी कारण तत्काल एक बसने सामनेसे आकर मेरे पाँव टैक्सी-स्टैंडकी ओर जानेसे रोक लिये। मैंने मनमें ईश्वरको लाख-लाख धन्यवाद दिया और मैं बसकी ओर लपका। परन्तु बस ठसाठस भरी थी। इसी समय न जाने कहाँसे एक अन्य व्यक्ति आ टपका और उस तीव्रगतिकने न आव देखा न ताव, मुझे एक ओर करके बसके फुटबोर्डपर पाँव रख दिया। बसमेंसे एक सवारी उतरी थी, अतः कंडक्टरने दोनों सवारियोंको ले जानेसे स्पष्ट इनकार कर दिया। मैं बड़ी उलझनमें था। यह समय परोपकारका नहीं था। रात काफी हो चुकी थी और शीतके जोरसे अंग-अंग काँप रहा था। अन्ततः मैंने उन नवागन्तुक महाशयसे ठान लेनेका निश्चय कर ही लिया। मैं शारीरिक शक्तिके नामपर

अपने-आपको सर्वथा हीन ही मानता रहा हूँ, फिर भी उस समय न जाने कैसे मुझमें शक्तिका अभूतपूर्व संचार हो उठा। मैंने बसके फुटबोर्डपर पाँव अड़ा दिये और उस नवागन्तुकको ढकेलकर नीचे कर दिया। परन्तु अपने-आपको इस समय शक्तिमान् समझ लेना मेरी सरासर भूल थी। यह दो ही क्षणोंमें मुझे मालूम हो गया। नवागन्तुकने दो-चार अपशब्द मुझे कहे और कंडक्टरको भी धक्का देता हुआ वह ऊपर पहुँच गया। कंडक्टरको जरा भी दया न आयी और घंटी दे दी। मैं दयनीय नेत्रोंसे उस बसको इस प्रकार जाते हुए देख रहा था, मानो डाकू मेरा सर्वस्व लूटकर लिये जा रहे हों और मैं निस्सहाय खड़ा उन्हें देख रहा होऊँ।

परन्तु आश्चर्य! बस जरा ही दूर जाकर रुक गयी। मैं भागकर उसके पास पहुँचा। देखता क्या हूँ कि उसमेंसे एक वृद्ध महाशय उतर रहे हैं। उन्होंने उतरते हुए कहा—'आपकी गोदमें छोटा-सा बच्चा है और यह आखिरी बस है। मुझे तो यही कोई एकाध मील ही जाना है।' मैं हतप्रभ-सा उस वृद्धके आश्चर्यजनक निश्चयके सम्बन्धमें सोच ही रहा था कि वे वहाँसे चल दिये और बसके कंडक्टरने भी घंटी दे दी। मेरे पाँव न जाने कैसे बसके फुटबोर्डपर चले गये और न चाहते हुए भी मैं बसपर चढ़ गया।

बसके यात्री उस वृद्धके इस कर्तव्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर रहे थे। उन्हींमेंसे एकने यह भी बताया कि वृद्ध बीमार थे। बस काफी दूर जा चुकी थी, अन्यथा मैं बस रोककर उन महाशयको चढ़ानेका प्रयत्न करता। मुझे रह-रहकर कंडक्टरपर क्रोध आ रहा था, जिसने इस आखिरी बसके समय भी एकाध व्यक्तिके अधिक हो जानेको भी सहन न किया। मैं उसकी इस कर्तव्यपरायणताको कोस रहा था।

मैं घर पहुँचा। रूखे मनसे भोजन किया। पत्नीने मेरी

उदासीनताका कारण पूछा, पर मैंने बहाना कर दिया और जाकर विस्तरपर सो रहा।

प्रातःकाल हुआ। मुझे पत्नीने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' लाकर दिया। मैंने प्रथम पृष्ठके शीर्षकोंपर नजर दौड़ानेके बाद ज्यों ही अंदरके स्थानीय पृष्ठपर दृष्टि डाली तो एक समाचारपर दृष्टि अटकी-की-अटकी रह गयी। समाचार था 'गत रात हार्डिंग ब्रिजके पास एक वृद्धकी सर्दीमें ठिठुरकर मृत्यु हो गयी।' मेरी साँस ऊपर-की-ऊपर और नीचे-की-नीचे रह गयी। मैंने झटपट कपड़े पहने और सम्बन्धित विभागके पास पहुँचा उन वृद्धका पता लगाने। वहाँसे पता लगा कि वृद्धके सम्बन्धी उनका शव अपने घर ले जा चुके हैं। मैंने विभागके कर्मचारियोंसे घरका पता लिया और कुछ ही समय बाद मैं वृद्धकी अर्थीके पास खड़ा आँसू बहा रहा था। यह वही रातवाले परोपकारी महाशय थे, जिन्होंने एक बच्चेपर तरस खाकर अपना जीवन बलिदान कर दिया। मेरी विचारशक्ति अवरुद्ध हो गयी थी। मैं हतप्रभ-सा खड़ा एक कोनेमें अपने आँसू रोकनेका प्रयत्न कर रहा था और जब मुझे पता चला कि उक्त वृद्ध निःसन्तान थे तो उस देवतुल्य मानवके सम्मानमें मेरा मस्तक झुक गया।

यह एक ऐसी घटना है जिसे जीवनमें कभी भुला न सकूँगा।

(धर्मयुग)

—श्रीसत्यप्रभाकर

'मकरुजको नजात नहीं'

(ऋणीकी मुक्ति नहीं)

कुछ वर्षों पहलेकी बात है।

मेरे पिताजी एक दफ्तरमें नौकरी करते थे। अवकाशके बाद कटड़ा चड़तसिंह (अमृतसर)-में एक दोस्तके यहाँ चले जाते थे। वह कोरा रेशम फेरनेवाला एक दूकानदार था। उसकी यह दूकान एक चौबारेमें थी जहाँ उसके और भी कई कारीगर उसके लिये मजदूरीपर रेशम फेरते थे। रेशम फेरनेवालोंको 'नकाद' कहा जाता था और दूकानदारको 'उस्ताकार' कहा जाता था। उस्ताकारका नाम शायद रामरत्न था।

रामरत्नकी ऊपरकी मंजिलमें जूआ होता था। मेरे पिताजी खुद जूआ नहीं खेलते थे। वे जुआरियोंमें साहूकारी करते थे। दाँवके समय जुआरी उनसे उधार ले लेते थे। दाँव पड़ता था तो एकके बदले दो दे देते थे। अधिक भी दे देते थे। जो दाँव पड़नेपर नहीं देते थे, उनसे हमारे पिताजीको ले लेना आता था। वे प्रायः हर एकसे अपनी पाई-पाई अवश्य वसूल कर लेते थे। उनका नाम लाला राजाराम था। शरीर कोई अधिक बना हुआ नहीं था, पर साहस बड़ा था। खाने-पीनेके शौकीन और दिलके दरिया थे। दो-चार चपरगट्टू अपने साथ रखते थे।

अमृतसरमें महामारी पड़ी और वे मर गये। मैं और मेरा छोटा भाई रामजस उन दिनों बम्बईमें थे।

हमारी माँ पहले मर चुकी थी। हमारे पिताजीने दूसरी शादी नहीं की थी। हमें हमारी नानीके सुपुर्द कर दिया था। वे हमें

लेकर अपने बेटेके पास बम्बई गयी हुई थीं।

हम सब अमृतसरमें लौट आये और प्रायः स्थायीरूपसे रहने लगे।

जून-जुलाईका महीना था। सन्-संवत् तो याद नहीं। हम दोनों भाई अभी छोटे-छोटे ही थे। नानीके पास बैठे हुए थे। किसीने दरवाजा खटखटाया। नानीने आवाज दी, 'कौन है?' देखा, कड़कती धूपमें एक बूढ़ा मुसलमान लाठी टेके खड़ा ऊपरकी तरफ देखता हुआ उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा है। उसकी कमर झुकी हुई थी। बाल तमाम सफेद थे।

आवाजके बदलेमें आवाज सुनकर उसने कहा—'राजारामके बेटे यहीं रहते हैं?' मेरी नानीने कहा—'हाँ भाई! क्या बात है?' वह बोला—'उन्हें लेकर जरा नीचे आ जाइये।' पहले तो मेरी नानी डरीं कि कहीं कोई गुंडा-बदमाश न हो। राजारामसे बदला लेने न आया हो।

उसने फिर कहा—'बेबेजी! घबरायें नहीं। मैं राजारामका दोस्त हूँ, दुश्मन नहीं।'

मेरी नानी हम दोनोंको लेकर नीचे चली गयी। उसने कहा—'बैठ जाइये। हम तीनों थडेपर बैठ गये। उसने बाँसहरीसे जितने रुपये थे निकालकर हमारे सामने रख दिये और कहा—'बेबे! यह रुपये तुम उठा लो। पूरे पचीस हैं। इन्हें इन बच्चोंके काममें ले लीजियेगा।'

मेरी नानीने कहा—'बाबा! यह रुपये कैसे हैं?'

वह बोला—'कोई खैरात नहीं, कर्जा है, जो लाला राजारामका देना था।'

'मैं जूएमें टोटेके समय उनसे दस-बीस-पचासतक उधार ले लेता था, जब दाँव पड़ता था तब दे देता था।'

इसी तरह एक बार उनसे पचीस रुपये लिये। मैं बड़ा उचक्का, बदमाश और खूँखार था। रोज किसी-न-किसीसे टक्कर ले लेता था। एक बार एक टक्करमें मेरे हाथों किसीका खून हो गया। मुझे घटनास्थलपर पकड़नेकी किसीकी हिम्मत न पड़ी। मशहूर थानेदार प्रेमसिंह भी मौजूद था। मैं भाग गया। बादमें एक मित्रके धोखा देनेसे, विश्वासघात करनेसे मैं पकड़ा गया और मुझे आजन्म कालेपानीकी सजा हुई। कालेपानीमें जाकर भी मैं गुंडागर्दीसे बाज न आया। वहाँ भी कोई-न-कोई उद्दण्डता कर ही देता। फलतः मुझे माफी एक दिनकी भी न मिली। मैं पूरे बीस साल काटकर अभी पिछली साल ही आया हूँ।

'मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। मौतके किनारे हूँ। सोचा, राजारामका कर्जा सिरपर उठाये मरनेसे नजात नहीं मिलेगी। मैं मुसलमान हूँ। मेरे कुरान-शरीफमें लिखा है कि मकरुजको (कर्जदारको) नजात (मुक्ति) नहीं मिलता।'

मैंने मजदूरी करके धीरे-धीरे ये पचीस रुपये जमा किये हैं। इन्हें उठा लो और बच्चोंसे कहला दो—'बाबा! मुनाफा माफ किया।' मेरी नानीने रुपये उठाकर हम दोनोंसे ऐसा ही कहला दिया और बूढ़ा सलाम-दुआ करता खुशी-खुशी चला गया।

—गुराँदित्ता खन्ना

आदर्श सहनशीलता

बंगालके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीविश्वनाथ शास्त्रीके जीवनसे सम्बन्धित घटना है। एक बार किसी महत्त्वपूर्ण विषयपर दो पक्षोंके विद्वानोंमें शास्त्रार्थ हो रहा था। इनमें एक ओरका नेतृत्व कर रहे थे—श्रीविश्वनाथ शास्त्री।

दोनों ओरसे अपनी-अपनी समझसे अकाट्य युक्तियाँ दी जा रही थीं। दोनों ओरके पण्डित यही समझ रहे थे कि विजय उनकी ही होगी, परन्तु विश्वनाथ शास्त्रीके तर्कोंका खण्डन करना आसान काम नहीं था। आखिर उनके तर्कोंके सामने विपक्षी विद्वान् ठहर नहीं सके। सभी निरुत्तर हो गये। है तो यह दुर्बलता ही, पर होता यही है कि हारनेवाले क्रोधमें भर जाते हैं। अतः जब शास्त्रार्थमें विपक्षियोंको अपनी हार स्पष्ट दिखायी देने लगी तब उनमेंसे एक पण्डितने अपनी सूँघनेकी तम्बाकूकी डिबिया खोली और सारा तम्बाकू श्रीविश्वनाथजीके सिरपर उड़ेल दी।

श्रीविश्वनाथजीके स्थानपर अन्य कोई होते तो इस प्रकारके बर्तावको न सहकर लड़ बैठते। लड़ाई होने लगनेपर शास्त्रार्थकी बात छूट जाती और कौन पक्ष हारा, कौन जीता इसके निर्णयका अवसर ही नहीं रह पाता। पर श्रीविश्वनाथजी बड़े धैर्यवान्, गम्भीर तथा सहिष्णु विद्वान् थे। उन्होंने क्रोधका उत्तर क्रोधसे नहीं दिया वरं हँसकर तम्बाकू फेंकनेवालेसे कहा—'पण्डितजी! अबतक तो हम प्रसंगवश अन्य विषयोंपर बातचीत कर रहे थे।

अब हमें मूल विषयपर आना चाहिये। आपने तम्बाकू फेंककर व्यर्थ ही अपना नुकसान किया।'

मूल विषयपर वे क्या आते। हार तो चुके थे पहले ही। मौका खोज रहे थे लड़कर हारसे बचनेका। पर श्रीविश्वनाथजीकी सहिष्णुताने वह अवसर ही नहीं आने दिया। वे सब पानी-पानी हो गये। हार तो गये थे प्रतिभासे ही। अब उनकी सहनशीलतासे तो सर्वथा लज्जित और पराजित हो गये। सबने आदरपूर्वक विश्वनाथजीका अभिवादन किया।

—प्रो० श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

मैं घूस नहीं लेता

हमारे मकानके सामने एक वृद्ध रहते थे। वे निवृत्तजीवन बिताने आये थे। जीवनमें उपयोगी हों, ऐसे बहुत-से अनुभवके प्रसंग उनसे सुननेको मिलते थे। उन्हींमेंसे एक प्रसंग उन्हींके शब्दोंमें यहाँ उपस्थित किया जा रहा है—

विश्वयुद्धका समय था। मैं कराँचीमें अपने बोहरे हिस्सेदारके साथ ठेकेका काम करता था। सरकारी कंट्राक्टका आठ लाख रुपयेका काम हमने आरम्भ किया था। इसमें बहुत मुनाफेकी सम्भावना नहीं थी। अवश्य ही अंग्रेज इंजीनियर कुछ रिश्वत लेकर कामको बहुत अच्छा बतला दे तो लाख-डेढ़-लाख रुपये मिलनेकी सम्भावना थी। मैंने और मेरे हिस्सेदारने सलाह करके चौदह हजार रुपये अंग्रेज इंजीनियरको देनेका निश्चय किया।

एक दिन हम दोनों फलकी टोकरी और चौदह हजार रुपये लेकर अंग्रेज-इंजीनियरके मकानपर पहुँचे। औपचारिक बातचीतके बाद 'फलकी टोकरी अपनी भेंटके लिये लाये हैं' ऐसा हमलोगोंने कहा। उन्होंने टोकरीमेंसे सिर्फ तीन केले लेकर कहा—'बाकी सारे फल मेरी ओरसे अपने बच्चोंको बाँट दीजियेगा।' इसके बाद उन्होंने हमारे आनेका कारण पूछा। मैं संकोचमें पड़ गया। बगलमें बैठे हुए अपने हिस्सेदारको मैंने इशारेसे रुपये देनेकी बात समझायी। उसने चौदह हजारका बंडल टेबलपर रखकर कहा—'यह भी थोड़ी-सी आपकी भेंट है, इसे स्वीकार कीजिये।' इसके बादके दृश्यको मैं कभी नहीं भूल सका। गोरा इंजीनियर लाल-पीला हो गया और उसने 'रास्कल'

तथा 'नानसेन्स' कहकर हमारी अभ्यर्थना की तथा चौदह हजारके बंडलको टेबलसे फेंक दिया; फिर तुरंत ही हमें बाहर निकल जानेका आदेश दिया।

हमलोग अपराधी थे। घबराये हुए थे। अतएव निराशमुखसे रुपये लेकर वापस लौटे। कुछ ही दूर गये थे कि इंजीनियरका आदमी—'आपको साहब बुला रहे हैं' कहकर हमें वापस मकानपर ले गया।

इस समयका दृश्य पहलेकी अपेक्षा भी विशेष चढ़ा-बढ़ा था। गोरे इंजीनियरने हमसे माफी माँगी और उसका कारण यह बताया कि 'उसने हमलोगोंके साथ अनुचित बर्ताव किया था।' फिर उसने कहा—'मैं रिश्वत नहीं लेता, मुझे इतनी ही बात आपलोगोंको जनानी थी। इसकी जगह मैं बहुत ही अनुचित बोल गया और आवेशमें सज्जनताको भूल गया।'

इसके बाद हमलोगोंके साथ ही उसने चाय पिया। फिर बातचीतके दौरानमें कहा—'भाई! मैं रिश्वत नहीं लेता। मुझे सरकार दो हजार रुपये मासिक देती है। मेरे कुटुम्बके लिये यह रकम बहुत ज्यादा है। जाओ, आपलोग ईमानदारीसे सब काम करो, जरूर सफल होओगे।' इसके बाद हमलोगोंने विदा ली।

चौदह हजार रुपयेकी बड़ी रकमको ठुकरा देनेवाले गोरे इंजीनियरने हम-जैसे अपराधियोंके साथ जिस सौजन्य और उदारताका बर्ताव किया, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।

(अखण्ड आनन्द)

—भगवतीप्रसाद

अमोघ ओषधि—'नारायणकवच'

कुछ साल पहलेकी बात है। मेरे घुटनेमें अचानक भयानक दर्द होने लगा। मैंने साधारण रोग समझकर ग्रामीण जड़ी-बूटियोंसे प्राथमिक उपचार किया, परंतु दर्द कुछ भी कम नहीं हुआ। वरं उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। यहाँतक कि चलने-फिरनेमें लाठीका सहारा लेनेपर भी कठिनता होने लगी। इसके बाद मैं शहरी डॉक्टरोंकी शरणमें गया। बहुत-से डॉक्टरोंने रोगकी परीक्षा की। किसीने कालान्तरमें कैन्सरकी सम्भावना बतायी तो किसीने हड्डीमें टी० बी०। किसीने एक-डेढ़ साल लगातार इंजेक्शन दिलानेकी सलाह दी तो किसीने पाँव कटवानेतककी राय दी। पचास-साठ इंजेक्शन भी लगातार लगाये गये। परंतु दर्द तो कम हुआ ही नहीं, नये-नये रोगोंने ताण्डव करना शुरू किया। शायद इंजेक्शनकी प्रतिक्रिया थी। कुछ भी हो, अन्ततोगत्वा मैं हताश होकर पड़ा रहने लगा।

एक दिन मेरे गुरु, जिनसे मैंने व्याकरण आदि पढ़े थे, आये और उन्होंने कहा कि 'तुम अब इन सब डॉक्टरी प्रपंचोंको छोड़कर श्रीमद्भागवत षष्ठ स्कन्धस्थ 'नारायणकवच'का पाठ करो। भगवान्‌की कृपासे तुम्हें लाभ होगा।' इस उपदेशके अनुसार मैंने 'नारायणकवच'का पाठ शुरू किया। यथाशक्ति स्नान-संध्याके बाद एक आवृत्ति पाठ मैं प्रतिदिन करने लगा। क्रमशः रोग भी क्षीण होने लगा। तबसे प्रायः छः महीने बीत गये। आज भी मेरा पाठका नियम चल रहा है और मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। दर्द किस स्थानमें था, इसका भी पता नहीं है। इसीसे

मैं सभी भाइयोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि वे भी आवश्यक होनेपर इस सर्वभय-व्याधिनाशक 'नारायणकवच'का पाठ करें और परम दयालु परमात्मा नारायणके शरण होकर सारी आधि-व्याधिसे मुक्त हों।

—भवनाथ ढकाल

विश्वासका फल

सन् १९२०-२१ की बात है। मैं नापाड ग्रामका निवासी हूँ। नापाड ग्राम आणन्दसे थोड़ी दूरपर बसा हुआ है। उस समय नापाडसे आणन्द जाने-आनेके लिये मोटरबस या किसी दूसरी सवारीकी सुविधा न थी। अच्छी सड़क भी नहीं थी। पगडंडियोंसे अथवा कच्ची सड़कपर बैलगाड़ियोंसे आना-जाना होता था।

एक बार मैं किसी कामसे नापाड गया था। वहाँसे प्रातः लगभग ९-१० बजे आणन्द लौटते समय मेरे ही नापाड ग्रामकी बोहरा जातिकी एक विधवा बहिन उरबाई अपने भाईके साथ बैलगाड़ीसे आणन्द आ रही थी। उनका और मेरा साथ हो गया। वे दोनों भाई-बहिन पहुँची हुई उम्रके थे और कमजोर भी।

अचानक मैंने उरबाईसे पूछा—'क्यों उरबाई! आणन्द दवा करवाने जा रही हो!' उरबाईने उत्तर दिया—'नहीं भाई! मैं दवाखाने नहीं जा रही हूँ। मैं तो अपने घरका दस्तावेज अपने इस भाईके नाम करवाने जा रही हूँ। इधर मेरा शरीर ठीक नहीं रहता। देहका क्या भरोसा। मेरे मरनेके बाद मेरे सगे-सम्बन्धी मेरे इस भाईको हैरान न करें, इसलिये पहलेसे पक्का दस्तावेज करवा देना अच्छा है। कचहरीमें सनाख्त* के लिये मुखियाजीने साथ आनेकी बात कही थी, पर वे न आ सके। दो दिन बाद आनेका वादा किया है; किन्तु ये गाड़ीवान भाई

---

* किसी भी दस्तावेजकी रजिस्ट्री करवाते समय सब-रजिस्ट्रार दस्तावेज करने और करानेवाले दोनोंके किसी परिचित व्यक्तिसे, जिसको सब-रजिस्ट्रार भी स्वयं पहचानते हों, सनाख्त करवा लेनेके बाद ही रजिस्ट्री करते हैं।

गाड़ी लेकर आ गये। इनको मना कैसे करती; इनका तो सारा दिन ही बिगड़ जाता। मैंने सोचा—'सनाख्तके लिये खुदा-सरीखे मालिक हैं, तो कोई-न-कोई मिल ही जायँगे। आओ भाई, तुम भी इस गाड़ीमें बैठ जाओ। क्यों आणन्द ही जा रहे हो न?'

मैंने कहा—'हाँ, मुझे आणन्द ही जाना है। चलो, अच्छा साथ मिल गया।' यह कहकर मैं गाड़ीमें सवार हो गया।

उस समय श्रीभाईलाल भाई व्यास नामक एक सज्जन सब-रजिस्ट्रार थे। आणन्दमें रहनेके कारण उनसे मेरा अच्छा परिचय था। मुझे अचानक ईश्वरीय प्रेरणा हुई कि 'इस बाईकी भगवान्‌पर अडिग श्रद्धा है। कहीं भगवान्‌ने ही तो इसके कार्यमें हाथ बँटानेके लिये मुझे यहाँ नहीं भेजा है? मैं ही इस बाईके साथ कचहरीमें जाकर सनाख्त करके दस्तावेज रजिस्टर्ड करवा दूँ तो क्या हर्ज है?'

मनमें इस विचारके आते ही मैंने बाईसे कहा—'तुम सनाख्तकी चिन्ता न करना। सब-रजिस्ट्रारके साथ मेरा परिचय है। मैं तुम्हारे साथ चलूँगा और आशा है, भगवान्‌की इच्छासे तुम्हारा काम सरलतासे हो जायगा।' मेरे इस प्रस्तावको सुनते ही उरबाई और उसके भाई आनन्दमें भर गये। उनके चेहरोंपर चिन्तामुक्तिजनित उल्लासकी रेखाएँ उभर आयीं और अचानक उरबाईके मुखसे ये शब्द निकले—'वाह! अल्लाह कितना दयालु है।'

अन्तमें बैलगाड़ी कचहरी पहुँची। दस्तावेज लिखवाकर सब-रजिस्ट्रार महोदयके सामने पेश किया गया। भगवान्‌की इच्छासे उस दिन दस्तावेज करवानेवाले व्यक्तियोंकी भीड़ भी अधिक न

थी! इतनेमें पुकार हुई और हम तीनों सब-रजिस्ट्रारके सामने उपस्थित हुए। मैंने सनाख्त की और दस्तावेज नोट करनेका काम पूरा हो गया।

तदनन्तर सब-रजिस्ट्रारने मुझसे पूछा—'तुम इस बाईके साथ कहाँसे आ गये! तुम्हें तो अपनी सिलाईके कामसे ही फुरसत नहीं मिलती।' मैंने कहा—'मैं गत कल नापाड गया था। लौटते समय मुझे रास्तेमें यह बाई मिली और इसने मुझे गाड़ीमें बैठा लिया और सब बातें कहीं।' मैंने सोचा—'बाईका काम पूरा करनेके बाद ही दूकान जाना उचित होगा।'

इसके पश्चात् सब-रजिस्ट्रार साहेबने वृद्धा भाई-बहिनकी कमजोरीकी ओर देखकर कहा—'लल्लूभाई! तुमने अच्छा काम किया। अब यदि यह बाई आध-पौन घंटा यहाँ और रुक जाय तो इनके दस्तावेजकी नकल भी मैं आज ही अभी करवा दूँ, जिससे नकल लेनेके लिये इन्हें फिर न आना पड़े। खर्च भी बच जायँ और काम भी आज ही निपट जाय। देखो न, दोनों कितने अशक्त हैं।'

उन दिनों अबकी तरह दस्तावेजोंकी फोटो लेनेके लिये उन्हें पूना नहीं भेजा जाता था। कचहरीके आदमी ही उनकी नकल कर देते थे। मैंने सब-रजिस्ट्रारकी बात उरबाईसे कही और सुनते ही उसे बड़ा आनन्द हुआ। उसने कहा—'मैं ठहर जाऊँगी' और वह खुदाको याद करने लगी।

आधे घंटेमें ही नकल हो गयी। दस्तावेज मिल गया। दस्तावेज लेते समय दोनों भाई-बहिन सब-रजिस्ट्रारको मूक आशीर्वाद दे रहे थे और सलाम कर रहे थे। दयालु सब-

रजिस्ट्रार भी उनकी इन भावनाओंका उत्तर मन-ही-मन नमस्कार करके दे रहे हों; ऐसी उनकी सौम्य मुद्रा थी।

बाहर आनेके बाद सनाख्त करनेके बदले उरबाई मुझे दो रुपये देने लगी। मैंने कहा—'बाई! मैं सनाख्त करनेके पैसे नहीं लेता। मनुष्यको मनुष्यका काम करना ही चाहिये। फिर, तुम्हारा यह काम तो खुदाने करवाया है।' यह सुनते ही दोनों भाई-बहिन मुझे अन्तरसे आशीर्वाद देने लगे। सब-रजिस्ट्रारकी दयालुता और बोहरा भाई-बहिनका भगवान्‌के प्रति विश्वास—ये दोनों बातें मुझे आज भी याद आ रही हैं। मेरा अनुमान है कि आधे घंटेमें दस्तावेजकी नकल होकर किसीको मिल जाय—देश-विदेश अदालतोंमें ऐसी घटना शायद ही कहीं हुई या होती हो।

—लल्लूभाई पटेल नापाडवाला

महात्माकी समता

आगरासे कुछ दूरीपर जो इटावा है, वहाँसे एक महात्मा प्रतिवर्ष घूमते हुए शिमला पधारा करते हैं। इस बार भी वे काश्मीर श्रीअमरनाथ-यात्रा जानेसे पूर्व आये थे। उन्होंने बतलाया कि कुछ वर्षों पहलेकी बात है, वे घूमते-घूमते वृन्दावन जा निकले। वहाँसे कुछ ही दूर एक प्रसिद्ध महात्माकी जंगलमें एकान्त कुटिया थी। उनका यह नियम था कि वे प्रतिदिन कुछ साधुओंको भोजन करवाकर फिर स्वयं भोजन किया करते। कई वर्षोंसे यह नियम चला आ रहा था। दैववश वे एक बार कुटियासे बाहर कहीं घूमने गये। पीछेसे किसी धूर्तने उनके पीतलके बर्तन चुरा लिये। वे जब लौटे तो उन्हें इसका पता लगा। वे पुलिस-थानामें रिपोर्ट करने गये। वहाँके रपट लिखनेवाले मुन्शीने पूछा—'क्या बात है?' इन्होंने कहा—'बर्तन चोरी हो गये हैं। आप रपट लिख लें और हो सके तो पता लगा दें।' मुन्शीने कहा कि 'बिना कुछ लिये मैं रपट नहीं लिखूँगा। तुम्हारे पास ५ रु० हों तो दे दो, नहीं तो यहाँसे भाग जाओ।' महात्माने कहा—'भाई! हमारे पास रुपये देनेको कहाँसे आये?' मुन्शीने उत्तर दिया कि 'आखिर तुमने बर्तन भी कहींसे माँगकर ही खरीदे होंगे, फिर किसीसे माँग लेना। चलो, हटो यहाँसे! मुफ्तमें मेरा समय नष्ट न करो। मेरे पास इतना अवकाश नहीं कि मैं तुम्हारी व्यर्थकी बातें सुनता रहूँ।' बेचारे अपना-सा मुँह लेकर वापस लौट आये।

समय व्यतीत होता गया। एक दिन वही मुन्शी किसी कार्यसे

जहाँ महात्माकी कुटिया थी, उस गाँवमें गया। वहाँ लोगोंसे उन महात्माकी चर्चा सुनी। लोगोंने बतलाया कि 'इन महात्माके नाम हर महीने, पता नहीं कहाँसे मनीआर्डर आते हैं और इनका नियम है कि ये कई साधु-महात्माओंको भोजन करवाकर फिर स्वयं खाते हैं। ये न तो गाँवमें कभी भिक्षा करते हैं और न किसीसे एक कौड़ी कभी लेते हैं।' यह सब सुनकर मुन्शीके मनमें उत्सुकता उत्पन्न हुई कि 'मैं भी ऐसे महात्माके दर्शन करता चलूँ।' वह कुटियामें गया और उनको देखकर जरा संकोचमें पड़ गया; क्योंकि ये वही थे, जिनकी रपट लिखनेसे उसने इनकार कर दिया था और पाँच रुपये माँगे थे। वह प्रणाम करके बैठ गया और पूछने लगा कि 'महात्माजी! क्या आपके शिष्यगण हैं, जो आपको मनीआर्डरसे रुपये भेजते हैं? नहीं तो यह नित्य साधु-भोजन कैसे चलता है?' महात्माने उत्तर दिया—'भाई! ईश्वर ही सब कुछ करता है। न तो कोई शिष्य है और न मुझे कोई अन्य व्यक्ति ही मनीआर्डरसे रुपये भेजता है, न मैं मण्डलेश्वर ही हूँ जो मुझे कहींसे किरायेके रुपये आते हों एवं न मेरा किसी मन्दिरपर ही अधिकार है कि जहाँसे चढ़त-चढ़ावा आता हो।' फिर महात्माजीने कहा—'भाई! तुम इतनी पूछताछ क्यों कर रहे हो? अपना कार्य करके वापस जाओ।' मुन्शीने कहा कि 'मुझे आश्चर्य हो रहा है कि आपका यह अन्नपूर्णाका काम कैसे चल रहा है। कृपा करके मेरे संशयको मिटाइये।' उसके हठ करनेपर महात्मा कहने लगे—'भाई! मनीआर्डर मेरे लड़केके यहाँसे आते हैं, जो आजकल सेशन जज है। यह सुनते ही मुन्शी घबराकर बोला—'तो महाराज! आप संन्यासी होनेके पूर्व क्या करते थे?' महात्माने कहा—'मैं

सुपरिंटेंडेंट पुलिस था। मनीआर्डरसे मेरी पेन्शनके रुपये भी आया करते हैं। इसी पूँजीसे महात्माओंकी सेवा होती है। यह सुनते ही मानो उसके पैरके नीचेसे जमीन निकल गयी। वह दण्डवत्-प्रणाम करके गद्‌गद स्वरसे बोला—प्रभो! मुझे क्षमा करना। मेरेसे बड़ी भूल हुई थी, जब मैंने आपकी रपट लिखनेके लिये पाँच रुपये माँगे थे। मेरे-जैसे व्यक्ति तो जब आप पदपर थे, आपके बूट पालिश करते होंगे। परंतु आपने यह बात जब रपट लिखाने आये थे, तब क्यों नहीं बतलायी? महात्मा कहने लगे, 'भाई! मैं पुलिसकप्तान था, तब था। अब तो मैं संन्यासी हूँ, केवल प्रभुका सेवक हूँ। तुमने रपट लिखनेसे इनकार कर दिया और मैं चुपचाप वापस आ गया।'

भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्‌गीतामें संन्यासीके जैसे लक्षण बतलाये हैं, इन महात्मामें ठीक वही दिखायी देते हैं—

(१) जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥

(६। ७)

'जिसने मन-इन्द्रिय आदिके संघातरूप इस शरीरको अपने वशमें कर लिया है, जो प्रशान्त है, जिसका अन्तःकरण सदा प्रसन्न रहता है; उस संन्यासीको भली प्रकारसे सर्वत्र परमात्मा प्राप्त है। वह सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख एवं मान-अपमानमें यानी पूजा और तिरस्कारमें भी (सम हो जाता) है।'

(२) समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥

(१२। १८)

'जो शत्रु-मित्रमें और मानापमानमें, अर्थात् सत्कार और तिरस्कारमें समान रहता है एवं शीत-उष्ण और सुख-दुःखमें भी सम भाववाला है तथा सर्वत्र आसक्तिसे रहित हो चुका है।'

(३) मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

(१४। २५)

'जो मान और अपमानमें समान तथा मित्र और शत्रुपक्षके लिये तुल्य है एवं जो सारे आरम्भोंका त्याग करनेवाला है, वह पुरुष 'गुणातीत' कहलाता है।'

पाठकजन! श्रीमद्भगवद्गीतामें कहे हुए उन लक्षणोंकी तुलना करके देखेंगे कि महात्मामें प्रायः ये सब गुण दिखायी देते हैं। कहाँ पुलिसकी कप्तानीका जोश और कहाँ एक मामूली मुंशीके द्वारा अपशब्दसे तिरस्कार किये जानेपर शान्तहृदय रहना और चुपचाप चले आना। धन्य हैं ऐसे महात्माजन!

—योगेन्द्रराज भण्डारी, बी० ए०

‘रामरक्षा’ आदिसे लाभके अनुभव

‘कल्याणके सन् १९६३ के अंक ५-६ में पीपलके पत्तेके प्रयोगसे सर्प-विष उतरनेकी बात छपी थी। तदनुसार प्रयोग करनेसे एक आदमी दो बार बचे। एक महिलाके उसके प्रयोगसे दस ही मिनटमें विष उतर गया। उसी समयसे मुझे ‘कल्याण’में प्रकाशित प्रयोगोंपर विश्वास हो गया। फिर मैंने ‘रामरक्षास्तोत्र’का पाठ प्रारम्भ किया। अब मैं किसी भी बीमारीमें उसका प्रयोग करता हूँ तो रोगी भगवान्‌की कृपासे अच्छा हो जाता है। इसके बाद ‘कल्याण’के छपे अनुसार गंगाजलमें आँखोंवाली दवा बनायी। मेरी माँकी आँखसे ठीक नहीं दीखता था, सबसे पहले उसीपर प्रयोग किया और उन्हें ठीक दीखने लगा। इसके पश्चात् एक पुरुषपर उसका प्रयोग किया, जिसको बिलकुल नहीं दीखता था। दवाके प्रयोगसे उसे आधा दिखायी देने लगा। अभी दवाका सेवन चालू है। उसके बाद ‘कल्याण’में छपे ‘बजरंगबाण’को सिद्ध किया। अब तो मैं ‘रामरक्षास्तोत्र’ और ‘बजरंगबाण’ दोनोंका खूब प्रयोग करता हूँ। आजकल रोज दोनों वक्त चार-पाँच जगह जाना पड़ता है, लोग बुलाकर ले जाते हैं और पाठ करते ही भगवत्कृपासे रोगीको आराम हो जाता है।

—ठाकुर बृजलालसिंह, रायतम

चोरीका भेद खुल गया

जब थी तब खूब ही सुख-समृद्धि थी कालू खुमाणके घर। वह था काठी राजपूत, पर हृदय समुद्र-सा विशाल था। समयका फेर, बेचारा कालू पैसे-टकेसे खाली हो गया। मित्रोंसे विमुख हो गया।

लड़केकी सगाई हो गयी थी। कन्यापक्षवाले विवाहके लिये बड़ी उतावली मचा रहे थे, पर बेचारा कालू क्या करता? विवाहके लिये कुछ पैसे तो चाहिये ही।

सुदामा-पत्नीकी तरह एक दिन कालूकी धर्मपत्नीने कहा—'यों बैठे रहनेसे कैसे चलेगा? लड़कीवाले घर उठाये ले रहे हैं। तुम कहते थे न कि भूवाभाई तुम्हारे मित्र हैं, जाओ तो सही उनके पास। श्रीकृष्णकी तरह वे कुछ कर देंगे तो अपना काम निकल जायगा। फिर धरती माता खेतीमें अच्छा दिन दिखायेगी; तब देना-लेना चुकता कर दिया जायगा'।

अन्तमें सकुचाते-लजाते कालूने अपनी बूढ़ी घोड़ी तैयार की। फटा-टूटा जीन रखा और भूवाभाईकी आशा करके घोड़ीपर एड़ी लगायी।

कालू भूवाके घर पहुँचा। कालूका हाल-हवाल भूवाकी स्त्रीने देखा। उसने कालूका स्वागत तो किया, पर सच्चे मनसे नहीं।

कालूने कहा—'हमारी स्थिति बदल गयी है, लक्ष्मीजी रूठ गयी हैं। लड़केका विवाह करना है। लड़कीवाले तकाजा कर रहे हैं, परंतु पैसोंके बिना विवाह कैसे हो। तुम्हारी देवरानीने कहा—'भूवाभाईसे मिलो तो सही, उनमें सहायता करनेकी शक्ति है और वे तुम्हारे मित्र हैं। इसीलिये मैं आया हूँ।'

भूवाकी पत्नीने कहा—'तुम्हारे भाई तो व्यापारमें फँसे हैं, उसमें बड़ी पूँजी रुकी है। परंतु तुम उनके आनेतक रुक जाओ।'

मन-बे-मन कालू वहाँ ठहर गया।

नाश्ता-पानीसे निपटकर कालू हुक्का पी रहा था। भूवाकी पत्नीने अपने आदमी वीरा वालंदको बुलाकर आदेश दिया— 'देख वीरा, मेरे बिछौनेपर जो गद्दा है वह कालू भाईके बिछौनेपर बिछा देना। उसके बाद तुझे घर जाना हो तो जाना!'

वीरा वालंदने गद्दा उठाया, बिछानेके समय उसे झड़काया। अंदर कुछ चमक रहा था। देखा तो सोनेमें हीरा जड़ा हुआ कानमें पहननेका झूमका था।

भूवाकी पत्नीने रातको सोते समय झूमका उतारकर रखा था। वह गद्देमें ही रह गया था। झूमका देखकर वीरा विचारमें पड़ गया। उसका मन कैसे वशमें रहता। जल्दी-जल्दी उसने झूमकेको जेबमें डाला और बिछौनेका काम तुरन्त ही सलटाकर कालूको बिछौनेपर सुला दिया। वह अपने घर चला गया। वह खुशी-खुशी अपनी पत्नीसे मिला और जेबसे झूमका निकालकर पत्नीको देते हुए बोला—'ले, देख! अपनेपर अब भगवान्की कृपा हो गयी।'

परंतु घरवाली यों ही उसकी बात मान लेनेवाली नहीं थी। उसने कहा—'कहाँसे चोरी करके लाये हो। यह तो माताजीका झूमका है। ऐसा चोरीका माल अपने नहीं पच सकता।'

वीराने इस तरफ ध्यान न देकर झूमकेको एक हड़ियामें रखा और उसे घरके एक कोनेमें गाड़ दिया।

× × × × ×

मुर्गेकी आवाज सुनकर कालू जाग गया। वस्तुतः विचारोंमें उलझे रहनेके कारण उसको रातभर नींद आयी ही नहीं। उसने तुरन्त ही बूढ़ी घोड़ीपर जीन रखा और भूवाकी पत्नीको बिना ही कुछ कहे वह अपने घर लौट गया।

गाँवके बनियेके यहाँ एक हजार रुपयेमें जमीन बंधक रखकर उन रुपयोंसे लड़केका विवाह घरकी रीति-रिवाजके अनुसार धूम-धामके साथ कर दिया। अब उसने शान्तिकी साँस ली।

इधर भूवाकी पत्नीने नहा-धोकर माथेमें बिंदी लगानेके लिये दर्पण सामने रखा। देखा तो झूमका नहीं था। उसने तुरंत ही वीराको पुकारा और कहा—'अरे वीरा! देख तो बिछौनेमें तो मेरा झूमका नहीं रह गया? मेरा झूमका कहाँ चला गया!'

वीराने गद्दा-रजाई, बिछौना आदि सब देख लिया, पर यह तो झूमका खोजनेका उसका नाटकमात्र था। अन्तमें वीराने कहा—'माँ, बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। मुझे तो कालूपर बहम होता है। वे बिना ही कुछ कहे चले गये। बेचारे गरीब आदमी हैं। लड़केका विवाह करनेके लिये वे झूमका ले गये होंगे।' मुझे तो ऐसा ही लगता है।'

वीराके कथनानुसार भूवाकी पत्नीका भी कालूपर सन्देह दृढ़ हो गया।

एक सप्ताहके बाद भूवा घर आया। भूवाकी पत्नीने पैसेकी मददके लिये कालूके आने, अचानक चले जाने और झूमकेके चुराये जानेकी बात कही। कालूके लड़केके विवाहकी बात सुनकर वीराने कहा—'मुझे तो लगता है कि उन्होंने झूमका

बेचकर उन्हीं रुपयोंसे लड़केका विवाह किया होगा।'

भूवा विचारमें पड़ गया—अपना मित्र सहायताके लिये आया और उसकी सहायताके लिये तो कुछ भी किया नहीं जा सका, उलटे उसपर झूमकेकी चोरीका इलजाम लगाना पड़ रहा है। अन्तमें भूवाने एक चिट्ठी लिखी—'कालूभाई! तुम बहुत दिनोंके बाद यहाँ आये और मैं तुमसे मिल नहीं पाया, इसके लिये मुझे दुःख है। तुम यहाँसे जो झूमका ले गये थे, उसका काम हो गया हो तो वापस भेज देना। सब कुशल है। काम-काज लिखना।'

कालूने चिट्ठी पढ़ी और वह विचारमें पड़ गया। 'कैसा झूमका और कैसी बात! इसमें कोई रहस्य होना चाहिये। जो कुछ भी हो भगवान् सबके समान मालिक हैं। भाईने कैसे अच्छे ढंगसे विचारपूर्वक चिट्ठी लिखी है, इससे मेरे प्रति उनके मनमें मानकी भावना दीख रही है।'

दिमागको ठंडा करके कालूने विचारपूर्वक अपने खानदानी स्वभावसे उत्तर लिखा—'भाई भूवा भाई, आभार! आजके दसवें दिन मैं स्वयं झूमका लेकर पहुँचूँगा। निश्चिन्त रहना।'

कालूने अपनी शेष जमीन बंधक रखकर एक हजार रुपये लिये और उनसे एक सुन्दर झूमका बनवाया। फिर सोचने लगा—'उस झूमकेकी पता नहीं, कितनी कीमत रही होगी। कहीं ज्यादा कीमतका होगा तो इस घोड़ीको दे दूँगा। फिर सब ठीक हो जायगा! क्या सत्यकी जय नहीं होगी?'

आज दसवाँ दिन था। भूवा अपनी देहलीपर बैठा कालूकी बाट देख रहा था। इतनेमें कालूको आते देखा। वह पास आ

गया। भूवा सामने गया। 'राम-राम' की। अपने गद्दे-तकियेपर कालूको बैठाया। फिर वीरा वालंदको बुलाकर कहा—'अरे वीरा! यह घोड़ी थकी हुई है, इसे छायामें बाँधकर घास-पूला डाल दे।'

'हाँ जी' कहता हुआ वीरा घासके बहाने अपने घर पहुँच गया और चुटकी बजाते हुए पत्नीसे बोला—'ले, तू कहती थी न कि यह चोरीका झूमका नहीं पचेगा, पर अब तो सचमुच ही पच रहा है। वह कालू नया झूमका लेकर देनेके लिये आ पहुँचा है। बोल, अब यह झूमका पचेगा या नहीं?'

घास-पूला डालनेमें वीराको देर हो गयी थी, इसलिये भूवाको कुछ सन्देह-सा हुआ। वह तुरंत उठकर चला घास लानेके लिये। घास वीरा वालंदके घरके पीछे भरा था। भूवा उस समय वहाँ पहुँचा, जब वीरा अपनी पत्नीसे उपर्युक्त बात कहने लगा था। वीराकी बात सुनकर भूवा चकित रह गया! वह बड़बड़ाया—'भगवान्! आज तुमने मेरी और मेरे मित्रकी—दोनोंकी लाज रखी।'

तुरंत ही वह बड़ी तेजीसे वीराके घरमें जा पहुँचा और वीराके गालपर एकके बाद एक—दो-तीन तमाचे जड़ दिये। वीरा घबरा गया। वह काँपने लगा।

भूवाने कहा—'हरामखोर! तुझे झूमका पचाना है। मैंने तुम दोनोंकी बातें सुन ली हैं। चोरी सिर चढ़कर बोलती है। ला, अभी दे वह झूमका, नहीं तो, अपनेको मरा ही समझना।'

वीराके होश-हवाश हवा हो गये। वह कोनेमें गया। उसने खोदकर हड़िया निकाली और उसमेंसे झूमका निकालकर काँपते हाथों लाकर भूवाभाईको दे दिया। अब लम्बी बात न चलाकर

भूवाने झूमका जेबमें रखा और घर लौट आया।

तुरन्त ही गाँवके पाँच बड़े-बूढ़ोंको बुलाया। आवभगत की। फिर कहा—'कालूभाई! तुम झूमका लाये हो? बिना कहे ले गये थे न?'

कालूने कहा—'हाँ भाई! जल्दीमें मैं झूमका ले गया था। कहना रह गया। लो, यह तुम्हारा झूमका, भूल-चूक माफ करना।' इतना कहकर अपने अँगरखेसे झूमका निकालकर भूवाके हाथपर रख दिया।

वहाँ बैठे सभी कालूकी ओर एकटक देख रहे थे। भूवाभाई तो विचारमें ही पड़ गये। वे घरके अन्दर गये। पत्नीसे दूसरा झूमका लेकर आये। अपनी जेबमेंसे वीरा वालंदसे मिला हुआ झूमका निकाला और तीसरा कालूका लाया हुआ झूमका था। यों तीनों झूमके पंचोंके सामने रखकर भूवाभाईने पंचोंसे कहा—'इनमेंसे सच्ची जोड़के दो झूमके आप अलग कर दीजिये।'

कालूवाला नया झूमका जोड़में नहीं आया। शेष दोनों झूमके एक जोड़के हैं—पंचोंने अपना निश्चय सुना दिया।

भूवाभाईने कहा—'कालूभाई! हमारी ओरसे तुमको बड़ा दुःख पहुँचाया गया है। धन्य है तुम्हारी खानदानको और तुम्हारी मानवताको। तुम्हारे-जैसा भाई-मित्र मिलना कठिन है।'

(अखण्ड आनन्द)

—उमियाशंकर ठाकुर

आदर्श ईमानदारी

कुछ पुरानी बात है, श्रीरामदुलाल सरकारका बचपन निर्धनतामें बीता। बड़े होनेपर उन्होंने एक व्यापारीके यहाँ पाँच रुपये महीनेपर नौकरी कर ली।

वे बड़ी मेहनत और ईमानदारीसे कार्य करते थे। इससे मालिक प्रसन्न था। धीरे-धीरे वह रामदुलालसे हजारों रुपयोंका लेन-देन कराने लगा। रामदुलालके हिसाबमें कभी एक पाईकी भी गड़बड़ न होने पाती थी।

एक दिन कलकत्तेमें कुछ दूकानें नीलाम होनेवाली थीं। मालिकने रामदुलाल सरकारको एक दूकान खरीदनेके लिये भेजा। उनके वहाँ पहुँचनेके पूर्व ही एक दूकान नीलाम हो गयी थी। अब दूसरी दूकान नीलाम होने लगी।

रामदुलालने उसकी कीमतका सही अनुमान लगा लिया था। बोली बोली जाने लगी। रामदुलाल भी रुपये बढ़ाने लगे। अन्तमें इनके नामसे वह दूकान १४,००० रुपयेमें दे दी गयी। रुपये ये साथ ले गये थे, तुरंत रुपये दे दिये। यह देखकर सब आश्चर्य करने लगे कि यह कैसा मूर्ख है। ४,००० रुपयेकी दूकानके १४,००० रुपये दे डाले; क्योंकि पहली दूकान कम रुपयोंमें ही नीलाम हुई थी और इस दूकानकी कीमत भी इतनी ही समझी जा रही थी। लोगोंकी इस बातचीतसे श्रीरामदुलालजी घबराये। वे चिन्ता करने लगे कि पता नहीं, इस कार्यसे उनपर मालिक कितने नाराज होंगे और उन्हें मैं क्या उत्तर दूँगा।

इतनेमें भगवान्‌की प्रेरणासे, एक बड़ा अंग्रेज व्यापारी वहाँ आया। बड़े अच्छे मौकेपर होनेके कारण उसे उस दूकानकी बड़ी आवश्यकता थी। उसने रामदुलालसे वह दूकान किसी भी कीमतपर उसे देनेके लिये कहा और बढ़ते-बढ़ते उसके एक लाख चौदह हजार रुपयेतक लगा दिये।

अब रामदुलालने अधिक लोभमें न पड़कर उसे वह दूकान १,१४,००० रुपयेमें बेच डाली और रुपये लेकर वे सीधे मालिकके पास पहुँचे। रामदुलाल चाहते तो एक लाख रुपये स्वयं ले सकते थे और चौदह हजार अपने स्वामीको दे सकते थे। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया; वे बड़े ईमानदार, सत्यप्रिय, स्वामिभक्त एवं बातके धनी थे। मालिकने किसीसे सुना था कि उनके मुनीम रामदुलालने चार हजारकी दूकानके चौदह हजार दे दिये हैं, अतः वे क्रोधमें भरे बैठे थे। रामदुलालको देखते ही बोले—'रामदुलाल! तुम तो जान पड़ते हो मेरा दीवाला निकालकर ही दम लोगे?' चार हजारकी दूकानके तुमने चौदह हजार क्यों दिये?' रामदुलालने रुपये देते हुए धीरेसे कहा—'बाबूजी! ये लीजिये आपके चौदह हजार रुपये और ये एक लाख मुनाफेके अलग लीजिये। मैं चौदह हजारकी दूकान १,१४,००० रुपयेमें एक अंग्रेज व्यापारीको बेच आया हूँ। अब तो आप प्रसन्न हैं?' रामदुलालने आदर्श ईमानदारीका उदाहरण उपस्थित किया, आदर्श स्वामिभक्तका कर्तव्य निभाया। मालिक प्रसन्न होकर बोले—'भाई रामदुलाल! तुम्हारी इस आदर्श ईमानदारी एवं स्वामिभक्तिसे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। ये एक लाख रुपये तुमने ही कमाये हैं; अतएव इन्हें तुम ही ग्रहण

करो। इनपर मेरा कोई अधिकार नहीं है।' बहुत ही आग्रह करके मालिकने रुपये दे दिये। तदनन्तर रामदुलालने अपना अलग कारोबार चलाया और थोड़े समयमें वे एक अच्छे व्यापारी बन गये। आधुनिक युगमें तो आदर्श ईमानदारीके ऐसे उदाहरण बहुत ही कम मिलते हैं।'

—प्रो० श्याममनोहर व्यास, एम्० एस्-सी०

नकली और असली प्रेम

रामविनोद एम्० कॉम० पास करके कानून पढ़ रहा था। बड़ा सुन्दर सुडौल गौर शरीर, मनोहर मुख, विशाल आँखें—सभी चित्तको खींचनेवाले थे। दो वर्ष पहले एक भले उच्च घरानेकी सुन्दर सुशील कन्या चम्पाके साथ उसका विवाह हो चुका था। वह मैट्रिकतक पढ़ी थी। उसके स्वभावमें शील, आर्यनारीके योग्य लज्जा, सेवा, त्याग, नम्रता, सादगी—सभी एक-से-एक बढ़कर गुण थे। पर स्वाभाविक ही वह चटक-मटक, फैशन, इधर-उधर भटकना, पर-पुरुषोंसे मिलना-जुलना, गंदे हँसी-मजाक, रोज सिनेमामें जाना आदि पसन्द नहीं करती थी। रामविनोद पढ़नेमें तेज होनेपर भी आजकलकी उच्छृंखलताका शिकार था। उसीके कॉलेजकी एक लड़की मनोरमासे उसका प्रेम हो गया। मनोरमामें रामविनोदकी मनचाही चीजें थीं। रामविनोदके पिता पैसेवाले थे, मनोरमाके पिता गरीब थे और शराबी तथा अवारा थे। मनोरमाने रामविनोदके सौन्दर्य तथा वैभवका लाभ उठानेके लिये उससे रोज-रोज मिलना, प्रतिदिन सिनेमामें ले जाना, इधर-उधर सैर-सपाटेमें घूमना और चम्पाके प्रति दुर्भाव भरना शुरू किया। चम्पा घरमें रहती, घरका काम करती, यथासाध्य रामविनोदके अनुकूल रहकर सेवा करती, हर तरहसे त्याग स्वीकार करके रहती, पर रामविनोद बात-बातपर उसे डाँटता, अपमान करता, कहता—'मुझे मुँह मत दिखा, तेरी सरीखी नालायक, असभ्यके साथ मेरा क्या मिलान, आदि।' वह बेचारी चुपचाप सब सुनती, पर कभी उसके मनमें पतिके प्रति घृणा नहीं हुई। अवश्य ही उसे पतिके आचरणपर दुःख होता,

इसलिये कि दुराचारमय बनकर इनका भविष्य न बिगड़ जाय। वह अपना सुख नहीं चाहती; किंतु पतिके भावी दुःखके चित्रोंको मन-ही-मन देखकर दुःखी रहती।

इधर रामविनोदने मनोरमाकी रायके अनुसार यह निश्चय कर लिया कि वह मनोरमाके साथ दो-तीन महीने बाद विवाह कर लेगा। चम्पाके आचरणमें मिथ्या दोष दिखलाकर उसे तलाक कर देगा। सारी योजना बन गयी और पैसेके लोभी किसी एक वकीलकी सलाहसे सब प्रकारके मसाले भी तैयार कर लिये गये। अब तो मनोरमा और रामविनोदका खुला दुराचार चलने लगा। मनोरमाके पिताको शराब आदिके पैसे मिलते, अतः वे भी बहुत खुश थे। रामविनोदके पिता सीधे स्वभावके पुराने ढंगके आदमी थे। वे कुछ बोलते नहीं थे।

एक दिन रामविनोद अपनी नयी कारमें मनोरमासे मिलने एक निश्चित स्थानकी ओर जा रहा था। स्वयं ही कार चला रहा था। शराब पी रखी थी। नशेमें दुर्घटना हो गयी। कार एक पेड़से बुरी तरह टकरा गयी। रामविनोदकी एक टाँग टूट गयी। नाक तथा आँखोंमें और मुखपर बड़ी चोट आयी। चेहरा विकृत हो गया। पुलिसने अस्पताल पहुँचाया। घरवालोंको खबर मिली। बेचारे बूढ़े पिता आये, माता आयी और रोती हुई चम्पा। अस्पतालमें इलाज हुआ। प्राण तो बच गये; पर एक टाँगको घुटनेके नीचेसे काटना पड़ा, एक आँख जाती रही, नाक धँस गयी तथा चेहरा भयानक हो गया। रामविनोदने कई बार मनोरमाको याद किया। बार-बार खबर भेजी, पर वह नहीं आयी। 'परीक्षाका समय समीप है, इसलिये आना कठिन है'—एक चिटपर लिखकर भेज दिया। चम्पाने पढ़कर सुना दिया। रामविनोद लम्बी साँस खींचकर रह

गया। इधर चम्पाने जो सेवा की, वह अकथनीय थी। वह खाना-पीना-सोना सब भूलकर पतिकी सेवामें जुट गयी। पाखाना-पेशाब कराना, फेंकना, मवाद साफ करना आदि सब काम अपने हाथोंसे करती। उसकी सेवापरायणता, परिश्रमशीलता, कार्यपटुता और बुद्धिमत्ताको देखकर अस्पतालकी प्रशिक्षण-विद्यालयों (ट्रेनिंग स्कूलों)-में शिक्षा पायी हुई नर्सें भी दंग रह गयीं।

डेढ़-दो महीनेमें रामविनोद कुछ ठीक हो गया। एक दिन मनोरमा आयी। रामविनोदके विकृत चेहरेकी ओर दृष्टि पड़ते ही उसने मुँह मोड़कर एक लिफाफा रामविनोदके हाथमें दिया और 'मुझे अभी बहुत जरूरी काम है, ठहरना सम्भव नहीं, पत्र पढ़ लेना'—कहकर बिजलीकी तरह कौंधकर तुरन्त चली गयी। रामविनोदने लिफाफेमेंसे पत्र निकालकर पढ़ा, उसमें लिखा था—

'रामविनोद! मुझे खेद है कि मोटर-दुर्घटनासे तुम्हें चोट आ गयी। पर मैं क्या कर सकती थी। परीक्षाकी तैयारी करनी थी। उधर इन दिनों प्रभातकुमारका प्रेम मेरे प्रति अत्यन्त बढ़ रहा था। वह कितना अच्छा है, तुम जानते ही हो। उसके साथ मिलने-जुलनेमें उसको तथा मुझको बड़ा सुख मिलता है, अतएव बहुत-सा समय इसमें लग जाता है। इसीसे मैं आ नहीं सकी। फिर, वह अविवाहित है, तुम्हें तो चम्पाको तलाक करना पड़ता; उसमें यह झगड़ा भी नहीं। दूसरे, तुम बुरा न मानना—मैं तो सदा ही स्पष्ट कहा करती हूँ। तुम्हारेयोग्य भी मैं नहीं हूँ। तुम्हारी इस स्थितिसे जितना अधिक चम्पाका मेल खायगा, उतना मेरा मेल खा भी नहीं सकता। मुझे भूल जाना। बस, क्षमा।'

—मनोरमा

इस रूखे, कर्कश, प्रीतिशून्य, स्वार्थपूर्ण, असभ्यताभरे पत्रको

पढ़ते ही रामविनोदपर मानो वज्रपात-सा हुआ; परंतु इसीके साथ उसकी चम्पाके प्रति अत्यन्त सद्भावना जाग उठी। देवी और दानवीके मूर्तिमान् चित्र सामने आ गये। उसने आँखोंसे आँसू बहाते हुए कहा—'चम्पा! तुम देवी हो। तुमने मेरी जो सेवा की है और तुम जो कर रही हो, इसका कोई बदला नहीं है। मेरे प्रति तुम्हारे जो उपकार हैं, उन्हें मैं कभी भूल नहीं सकता। मैं सदा तुम्हारा ऋणी हूँ। मैंने मोहवश तुम्हारे प्रति जो दुर्व्यवहार किया है, इसके लिये क्षमा करना········।'

चम्पाने बीचमें ही रोककर कहा—'यह आप क्या कह रहे हैं?' सेवा और बदला कैसा? आपका कष्ट तो मेरा ही कष्ट है। अपने-आप अपना काम करना सेवा थोड़े ही है। वह तो स्वाभाविक ही होता है। फिर उपकार तथा ऋणी होनेकी बात कैसी? क्या अपने कामसे कोई अपना उपकार मानता या ऋणी होता है? मैं तो सदा ही आपकी अभिन्न अंग हूँ। फिर मुझे तो शुरूसे ही यह सिखाया गया है कि आप हर हालतमें मेरे परमेश्वर हैं। आप मेरे प्रति कोई बुरा व्यवहार करते हैं, यह देखना ही मेरे लिये पाप है। हाँ, यह चिन्ता अवश्य रहती है कि आप दु:खी न हों।' यह कहती हुई चम्पा गद्गद होकर रामविनोदके चरणोंपर गिर पड़ी। रामविनोदने उठाकर उसे हृदयसे लगा लिया। ऐसा उसने पहली ही बार किया।

दोनोंके नेत्र सजल, हृदय सुधा-रसपूरित और सर्वांग पुलकित थे। धन्य आर्यनारी!

—मदनमोहन शर्मा

आदर्श अफसर

घटना सन् १९६० की है। पहली तारीख थी, इसलिये मन्दसौर ट्रेजरीमें वेतन लेनेवालोंकी भीड़ थी। इसी दिन एकाउंटेंट जनरल ग्वालियरको महीनेभरका हिसाब भी भेजा जाता है। अतः प्रत्येक विभागके सभी कर्मचारी अपने-अपने कार्यमें व्यस्त थे। कोई पत्रक बना रहा था तो कोई बिलोंकी जाँच कर रहा था। चपरासी भी सभी व्यस्त थे। कोई एकाउंटके बण्डल बाँध रहा था तो कोई साहबसे रजिस्टरमें तथा बिलों आदिपर हस्ताक्षर करवा रहा था।

उसी दिन पोस्टमैन भी पोस्टल, स्टाम्प तथा स्टेशनरी लेने आया था। मैंने पोस्टल इंडेंटकी जाँच करके स्टाम्प देने चाहे, तब देखा कि आलमारीके बाहर कार्डोंके पैकेट पड़े हुए थे, इससे आलमारी खुल नहीं रही थी। अतः पैकेटोंको हटानेके लिये मैंने दो-तीन बार चपरासियोंको पुकारा, परन्तु 'आते हैं, आते हैं'—कहकर उन्होंने बहुत समय निकाल दिया। पोस्टमैन बहुत देरसे खोटी हो रहा था। मैंने जाकर साहबसे कहा। साहबने चपरासियोंको बुलाकर पूछा तो उन्होंने इसका कारण कार्यमें व्यस्त होना बताया और कहा कि 'दो पारसल बाँधकर हम पैकेट हटा देते हैं।' साहबने काम करनेको कहकर उनको भेज दिया। फिर वे यह कहकर कि—'देखें पैकेट कहाँ पड़े हैं' उठकर मेरे साथ हो लिये। कैश-विभागमें आकर उन्होंने आलमारीके सामने रखे हुए पैकेटोंको अपने हाथोंसे उठा-उठाकर अलग रखना शुरू किया। मैं शर्मके मारे झुक गया। मैंने

जल्दीसे उनके हाथोंसे पैकेट ले लिये और नीची निगाह किये हुए कहा—'आप रहने दीजिये, मैं उठा लूँगा।' तब लोकरे साहबने कहा—'आज एकाउंट भी जाना जरूरी है और पोस्टमैनको स्टाम्प देने भी। चपरासी इधर-उधर कार्यव्यस्त हैं, अतः उनकी प्रतीक्षामें दूसरेको खोटी करना ठीक नहीं।' मैं नीची दृष्टि किये पैकेटोंको उठाता रहा।

उस दिन मुझे ऐसी शिक्षा मिली कि अब कोई कार्य नहीं होता है तो उसे मैं स्वयं कर लेता हूँ। जो स्वयं कार्य करके दूसरोंको प्रेरणा प्रदान करता है, वही सच्चा अफसर है। यदि सभी अफसर इस प्रकारके कर्तव्यशील बन जायँ तो कार्य बहुत अच्छा होने लगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

—वी० डी० नागर

करुणा और कर्तव्य-पालन

२८ जनवरी १९६२ की बात है, प्रातःकाल साढ़े सात बजे थे। अहमदाबादसे वेरावल जानेवाली सोमनाथ मेल ट्रेन कुंकावाव जंकशनपर आकर रुकी। मैं एक भीड़वाले डिब्बेमें चढ़ गया।

समयपर गाड़ी चली। उसी समय एक टिकट-चेकर साहब हमारे डिब्बेमें चढ़ आये। उन्होंने चेकिंग शुरू की। मेरे सामने एक ग्रामीण वृद्धा स्त्री बैठी थी। उसके साथ एक पाँच सालका छोटा लड़का भी था। चेकर साहबने टिकट माँगे तो उस स्त्रीने एक टिकट दिया और लड़केके टिकटके बारेमें पूछे जानेपर जवाब मिला कि लड़केकी बहुत छोटी उम्रके कारण उसका टिकट लेना अनावश्यक समझा गया। लड़केकी उम्र पूछनेपर वृद्धाने सच-सच पाँच सालकी उम्र बता दी। चेकर साहबने उस वृद्धाको समझाया कि 'तीन सालके बाद बच्चेका आधा टिकट लेना पड़ता है और अब उसकी भूलके कारण उस बच्चेके आधे टिकटका डबल चार्ज चुकाना पड़ेगा।'

डबल चार्ज और वह भी अहमदाबादसे वंडालतकका। चार्जकी रकम सुनकर वृद्धा घबरा गयी, अपनी अज्ञानजनित भूलके पश्चात्तापको और अपनी विशुद्ध सरलताको शब्दोंमें व्यक्त करनेमें असमर्थ होकर वह आँसू बहाने लगी।

डिब्बेके अन्यान्य यात्रियोंने चेकर साहबको सलाह दी कि वे माफ कर दें। परन्तु इस बातको मानना उन्हें ठीक नहीं लगा; क्योंकि ऐसा करनेपर प्रकारान्तरसे जान-बूझकर मुफ्तमें मुसाफिरी

करनेवालोंकी संख्या घटानेके बजाय उसे बढ़ानेकी एक राष्ट्रीय कुसेवा होती।

इस तरह 'करुणा और कर्तव्य-पालन' की दुविधामें चेकर साहब डूबे थे कि उनकी बुद्धिने बीचका मार्ग निकाल दिया। उन्होंने वृद्धापर डबल चार्ज किया और उसकी रसीद भी दे दी, परन्तु पैसे उस वृद्धासे आधे टिकटके ही लिये। आधे पैसे चेकर साहबने स्वयं अपने पाससे चुका दिये।

चेकर साहबका यह कर्तव्य-पालन देखकर सब दंग रह गये। उस समय उस वृद्धा देवीकी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि चेकर साहबपर आशीषका मूक अभिषेक कर रही थी।

कर्तव्यको ठुकराकर अथवा सत्ताका दुरुपयोग करके दया दिखलानेका दम्भ भरनेवाले लोग बहुत होते हैं, परन्तु स्वयं हानि उठाकर कर्तव्यभ्रष्ट न होकर भी मानवतायुक्त व्यवहार करनेवाले व्यक्ति विरले ही होते हैं। यही सार था यात्रियोंद्वारा की जानेवाली चेकर साहबकी प्रशंसाका—!

—जयंतीलाल प्र० पाठक, बी० एस्-सी० (ऑनर्स)

सर्पका भागवतपारायण-श्रवण

२१ दिसम्बर १९६१ ई० की बात है। इलाहाबादसे ४२ मील दूर केसरिया ग्रामके अन्दर लोग श्रीमद्भागवत-पाठ करा रहे थे। वहाँसे एक फर्लांग दूर एक खेतसे एक सर्प निकला और जहाँ भागवत-पाठ हो रहा था, उधरको बहुत तेजीसे बढ़ा। कुछ लोग उसे मारनेके लिये चले; परंतु भागवत कहनेवाले पण्डितजीने लोगोंको रोक दिया और वे उस सर्पको मारनेमें असफल रहे। थोड़ी देर बाद पण्डितजीने उस सर्पसे कहा कि 'यदि आपको भागवत-पाठ सुनना है तो आप इस सभामें बैठ जायँ; दूर क्यों हैं।' सर्प इतना सुनते ही तुरन्त उस सभामें आकर एक ओर बैठ गया और वह सात दिनोंतक भागवत सुनता रहा। २८ दिसम्बर सन् १९६१ ई० को जब भागवत-सप्ताह समाप्त हो गया और राजा परीक्षित्की कथाके बाद जब श्रीकृष्णभगवान्की जय बोली गयी, तब वह सर्प अपना प्राण त्यागकर स्वर्गको चल बसा। लोग सर्पको दिनमें पीनेके लिये दूध दे देते थे और वह रातमें चौकीके नीचे आराम करता था।

—फतेहचन्द साहू

वीरांगना

घटना जनवरीकी है। उत्तर रेलवेके सोनपुर विभागमें वाडमेर लाइनपर धुनाड़ा नामक एक छोटा-सा स्टेशन है। एक दिन एक राजपूत अपने छोटे-से पुत्र तथा तरुणी पत्नीके साथ रातकी गाड़ीसे वहाँ उतरा। उतरते ही वह अपनी पत्नीसे यह कहकर कि—'गाँव कुछ दूर है, मैं गाड़ी लाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहना……।' गाँवकी ओर चल दिया।

कुछ ही समय बाद दो नर-राक्षस आये और उस स्त्रीसे कहने लगे कि 'तुम यहाँ अकेली क्यों बैठी हो, हमारे क्वार्टरमें चलो। वहाँ और भी स्त्रियाँ हैं।'

उस स्त्रीने कहा—'मेरे पति मुझसे यहीं ठहरनेको कहकर गाड़ी लेने गाँवमें गये हैं। अतः मैं यहीं ठहरूँगी।'

थोड़ी देरके बाद उनमेंसे एक आदमीने वापस लौटकर उस स्त्रीको फुसला-समझाकर क्वार्टरमें जाकर ठहरनेके लिये विवश कर दिया। वह बेचारी अपने बच्चे तथा सामानको लेकर वहाँ चली गयी। उसने क्वार्टरमें जाकर देखा—वहाँ कोई भी स्त्री नहीं है। इधर वे दुष्ट अपनी दुर्वासना पूरी करनेके लिये उसे बुरी तरह छेड़ने लगे। वह उनसे रक्षा पानेके लिये पेशाबका बहाना करके—सामान तथा बच्चेको वहीं छोड़कर बाहर निकल गयी और तुरंत ही उसने क्वार्टरके किवाड़ बन्द करके बाहरसे साँकल लगा दी। अब तो वे बदमाश घबराये और किवाड़ खोलनेके लिये पुकारने लगे। उस स्त्रीने साफ कह दिया कि मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी।

बदमाशोंने धमकाकर कहा कि 'तू यदि दरवाजा नहीं खोलेगी तो हम तेरे बच्चेको मार डालेंगे।' इसपर सतीने कहा—'भले ही तुम बच्चेको मार दो और मेरा सामान भी रख लो; परंतु मैं दरवाजा नहीं खोलूँगी।'

उन क्रूर राक्षसोंने नन्हें-से शिशुका एक हाथ काटकर खिड़कीसे बाहर फेंक दिया और कहा—'तू अब भी दरवाजा खोल दे, नहीं तो हम तेरे बच्चेको जानसे मार डालेंगे!' इसपर जब उसने दरवाजा नहीं खोला, तब उन नर-पिशाचोंने बच्चेका एक पैर काट डाला। सतीने अपने हृदयको वज्र-सा कठोर बना लिया। वे राक्षस अन्दरसे चिल्लाते रहे और सती बाहर हुंकार करती रही! तदनन्तर उन लोगोंने उस नवजात शिशुका सिर काटकर कहा—'तू अब भी मान जा—दरवाजा खोल दे।' रात ढल चुकी थी। इसी बीच वह राजपूत (उस सतीका पति) लौट आया और उधरसे निकला। सतीने उसे पुकारकर बुलाया और सारी घटना कहकर सुना दी। फिर ललकारकर कहा—'तुम्हारे पास तलवार है, इन्हें मार सको तो मार डालो, नहीं तो मैं मारूँगी।' पुरुष उसकी बात सुनकर काँप उठा। पर सतीने विकराल रूप धारणकर तलवार हाथमें ले ली और किवाड़ खोल दिये। दरवाजा खुलते ही वे भागनेकी कोशिश करने लगे। सतीने तलवार चलायी तब एक उसकी ओर लपका। सतीने तुरंत उसका सिर धड़से अलग कर दिया, फिर दूसरेकी भी तुरंत यही गति हुई। सतीने सामान लिया और बच्चेके कटे शरीरके टुकड़े बटोरकर उठा लिये और वह स्वामीको साथ लेकर सीधी थानेपर पहुँची। उसने थानेके अफसरको सारी घटना सुना दी।

तो मैं आपको नौकरीसे अलग ही कर देता और……।'

'और साहेब! इस समय यदि उसको उत्तीर्ण करनेके लिये मुझपर दबाव डाला जाता तो मैं अपनी जेबमें त्यागपत्र रखकर ही आया था!' अध्यापकने कहा।

यह सुनकर साहेबका आनन्द दूना बढ़ गया। (अखण्ड आनन्द)

—इज्जतकुमार त्रिवेदी

ईमानदारसे चोर और चोरसे ईमानदार

हरनारायण सफल व्यापारी थे। राजस्थानसे सुदूर आसाममें जाकर उन्होंने पर्याप्त धन कमाया था। बड़े परिश्रमी और सत्यशील थे। इनके दो सन्तानें थीं—बड़ी लड़की गोदावरी और छोटा लड़का रामप्रसाद। गोदावरी रामप्रसादसे बारह वर्ष बड़ी थी। हरनारायणका देहान्त हुआ, उस समय रामप्रसाद केवल एक वर्षका था। उसके दो ही वर्ष बाद हरनारायणकी स्त्रीका भी देहान्त हो गया। दोनों बच्चे अनाथ हो गये। गोदावरीकी सगाई हो चुकी थी, विवाह होनेकी तैयारी थी कि उसकी माँके अकस्मात् मर जानेसे वह रुक गयी। पैसा काफी था। हिसाब-किताब भी सब साफ था। हरनारायणकी बहिन रामी अपने पुत्र सदासुखको लेकर वहाँ आ गयी। सदासुखका हृदय तामस था, पर वैसे वह बड़ा चतुर और व्यवहारकुशल था। उसने दूकानका सारा काम सँभाल लिया और रामी दोनों बच्चोंकी देख-भाल करने लगी। गोदावरीका विवाह भी कर दिया गया। रामप्रसाद पढ़ने लगा। गोदावरी अपने घरपर सुखी थी। रामप्रसाद लगभग दस-बारह वर्षका हुआ, तबतक उसकी बूआ (सदासुखकी माता)-का देहान्त हो गया। अब सदासुखकी नीयत बिगड़ी। उसने रामप्रसादके बचपन तथा गोदावरीके विश्वासका अनुचित लाभ उठाकर धीरे-धीरे सारी सम्पत्ति हड़प ली और दो-तीन सालमें झूठा घाटा दिखलाकर कहने लगा कि 'अब कैसे काम चलेगा। पूँजी तो हमारी घाटेमें लग गयी।' रामप्रसाद इस समय लगभग १५ वर्षका हो गया था। बेचारा क्या करता—गोदावरीको

इस बातका पता लगा, तब वह आयी, उसके पति आये, पर सदासुखने झूठे बही-खाते बना रखे थे। दिखा दिये। गोदावरी अपने भाई रामप्रसादको साथ लेकर घर चली गयी और दूकान उठा दी गयी।

सदासुख भी ऊपरसे दुःख प्रकट करता हुआ—'हर्षभरे हृदयसे देश चला गया। उसका वह हर्ष तामसी था; क्योंकि उसको भय बना था कि मेरा कहीं भण्डाफोड़ न हो जाय। हुआ भी यही। पाँच-छः वर्ष बाद जिन नेमीचन्द नामक व्यापारीके यहाँ झूठा जमा-खर्च करवाया था, उसके मनमें राम जागे—छोटे बच्चे रामप्रसादकी दुर्दशाके समाचार सुनकर नेमीचन्दका हृदय काँप गया और उन्होंने गोदावरीके पति नौरंगरायके पास जाकर गोदावरी तथा रामप्रसादको अपने पास बैठाकर सारा जमा-खर्च दिखा दिया और कहा कि 'तीन हजार रुपयेके लोभसे मैंने अस्सी हजार रुपयेका झूठा जमा-खर्च तीन वर्षमें किया है। मैं कोर्टमें साबित कर दूँगा, मुझे भी चाहे सजा हो जाय, पर मैं सदासुखको तुम्हारे पैसे नहीं खाने दूँगा।'

ये सब लोग इस बातको सुनकर दंग रह गये। इन्हें विश्वास ही नहीं होता था कि सदासुख भी कहीं ऐसा काम कर सकता है। नेमीचन्दने समझाया कि 'लोभ ऐसी ही बुरी चीज है। पैसेको देखकर नीयत बिगड़ ही जाती है। मेरी भी तो बिगड़ गयी, तभी तो मैंने तीन हजारके लोभसे तुम बच्चोंको इतना नुकसान पहुँचाया और एक विश्वासघाती चोरकी सहायता की। यों कहकर जब सारे बही-खाते दिखलाये, तब इन्हें विश्वास हुआ। गोदावरी, उसके पति और रामप्रसाद तीनों ही सात्त्विक वृत्तिके

थे। इन्हें सदासुखकी इस करनीपर क्रोध तो नहीं हुआ, बड़ा दुःख हुआ—यह सोचकर कि उसकी नीयत क्यों बिगड़ी। उन्होंने मुकदमा चलाना तो स्वीकार नहीं किया; पर सदासुखसे मिलकर बात करनेका निश्चय किया। तदनुसार ये तीनों और नेमीचन्द उसके पास देश गये।

वह इन सबको देखकर सहम गया। पर बाहरसे बहुत आवभगत की। खा-पी लेनेके बाद सारी बातें उससे कहीं, सब कुछ सप्रमाण था। इससे वह क्या बोलता। अपनी भूल उसने स्वीकार की और कहा कि 'मेरे हाथमें ही सब रुपये रहते थे। कुसंगमें पड़ गया और एक दिन रातको मेरे मनमें बुरे भाव आये। मैंने एक दोस्तसे सलाह की, वह भी कुसंगी तथा अवारा था। उसने भी सोचा, कुछ हमारे हाथ लगेगा, उसने मेरा समर्थन किया, पाँच हजार उसे मिले। उसने ही नेमीचन्दजीको जमा-खर्चके लिये तैयार किया और यह काण्ड मैंने कर डाला। कुछ रुपये तो कुसंगतिमें लग गये। फिर देशमें हवेली बना ली और कुछ रुपये लड़कीके विवाहमें खर्च कर दिये। मेरे पास अब नगद कुछ भी नहीं बचा है। मुझपर केस करोगे तो मैं बदनाम हो जाऊँगा।' यों कहकर वह रोने लगा। सचमुच ही वह पश्चात्तापकी आगसे इस समय जल रहा था।

गोदावरी तथा रामप्रसादका हृदय पसीज गया। गोदावरीने कहा—'भाईजी! आप चिन्ता न करें। मुझको तथा भैयाको रामी बुआजीने तथा आपने ही उस समय पाल-पोसकर हमारा जो महान् उपकार किया था, उसका कोई बदला नहीं हो सकता। आप यदि दूकानमें अपना हिस्सा रख लेते या कहकर रुपये ले

लेते तो आपका अधिकार ही था। आपसे कुसंगके प्रभावसे यह बुरा कृत्य हो गया। पर अब पश्चात्तापकी आगसे आपका वह पाप जल गया है। मैं आपके आशीर्वादसे प्रसन्न हूँ। भैया रामप्रसादकी दूकानमें पाँती कर दी थी। यह भी अब बीस-तीस हजारकी पूँजीवाला हो गया है। आप आशीर्वाद दीजिये और हो सके तो मेरे पिताजीकी पुरानी दूकानको फिरसे चालू करके इसका काम सँभालिये। रामप्रसादके पास पूँजी है ही, यह आपके पास रहेगा। हमलोग भी देख-भाल करते रहेंगे। आप तैयार हो जाइये।' नौरंगराय और बच्चे रामप्रसादने भी यही करनेको कहा।

गोदावरी आदिके इस सुन्दर बर्तावको देखकर सदासुख चकित हो गया। उसके हृदयमें पश्चात्ताप तो था ही, अब तो वह कृतज्ञतासे भर गया। हरनारायणजीकी पुरानी दूकान फिरसे चालू हो गयी। इसके बाद तो सदासुख इतना बदला कि मानो सत्य, ईमानदारी और सेवा उसके स्वभाव ही बन गये।

—गिरधारीलाल

मंद करत जो करइ भलाई

कुछ वर्ष पूर्वकी यह घटना है। घटना क्या है, मानव-मनकी छिपी अन्धकारमयी गुफाओंकी एक भयानक झाँकी है। भयानक विस्फोट जिस प्रकार कभी-कभी पृथ्वीके गर्भमें छिपी वस्तुओंको निकालकर बाहर फेंक देता है, उसी प्रकार घटनाएँ भी कभी-कभी मानवके अन्त:प्रदेशको उलीचकर बाहर कर देती हैं और तब हम सोचने लगते हैं कि वैदिक ऋषियों और प्राणाचार्योंने मानव-मनके बारेमें जितने भी सूत्र गढ़े हैं, उनमें कितनी सत्यता है। एक ओर जहाँ इस मनकी विशालताके आगे समुद्रोंकी गहराई और गिरिशृंगोंकी उत्तुंगता तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगती है, वहाँ दूसरी ओर यह कितना संकीर्ण, तंग और कृतघ्न होता है कि अपने उपकारीका रक्तपान करनेमें भी यह आगा-पीछा नहीं सोचता है।

बात यों हुई कि एक अध्यापक महोदय मानसिक रुग्णतावश जब-तब 'मेडिकल लीव' पर रहते थे। उस समय भी वे छुट्टीपर थे, किन्तु जब उन्हें किन्हीं सूत्रोंसे पता चला कि दफ्तरसे उनका वेतन लगकर आया है तो वेतन-वितरणके दिन अपने प्रधानाध्यापक महोदयके पास पहुँचे और वहाँ अपनी विपन्नावस्थाका वर्णन कर उस वेतनको देनेकी प्रार्थना की। सरकारी नियमानुसार मेडिकल लीवपर रहते व्यक्तिको वेतन उसी समय मिलता है, जब वह स्वस्थ होकर रोग-मुक्त-प्रमाणपत्रके साथ कामपर लग जाता है; किन्तु कुछ तो उसकी करुण कहानी सुनकर और कुछ आर्थिक संकटभारसे ग्रसित उसकी दीन-दशाको निहारकर

प्रधानाध्यापकजीने वह वेतन उसे दे दिया; किन्तु वेतन प्राप्त करनेकी आफिस-कापीपर उसके हस्ताक्षर लेना भूल गये। बादमें जब उन्हें इस चीजका ज्ञान हुआ तो उन अध्यापकको ढुँढ़वाया गया; किन्तु वे तो तबतक जा चुके थे। कागज दफ्तर पहुँचा दिये गये। बात आयी-गयी हो गयी। समय काले-धौले पंखोंपर सवार हो उड़ता रहा।

तब एक दिन उन्हीं अध्यापकने उच्चाधिकारियोंके पास प्रार्थनापत्र भेजा कि उन्हें अमुक मासका वेतन दिलवाया जाय; क्योंकि उस अवधिमें वे मेडिकल लीवपर थे। प्रधानाध्यापकजीने उससे कहा—'भैया! तुम्हें वेतन मैंने दिया है और तुम्हारे हस्ताक्षर भी ओरिजिनल कापीमें मौजूद हैं। हाँ, दूसरी कापीमें तुम उस समय शीघ्रतावश हस्ताक्षर न कर सके थे। सो अब कर दो। विश्वास न हो तो दफ्तर जाकर देख आओ।' यों कहकर उन्होंने वह दूसरी कापी उनके सामने हस्ताक्षरके लिये सरका दी।

'मैं दस्तखत-वस्तखत कुछ नहीं करूँगा और न मैं वेतनके विषयमें ही कुछ जानता हूँ, आपको जो कुछ कहना है अधिकारियोंसे कहिये। मैंने भी तो उन्हींसे कहा है, आपसे तो नहीं कहा।' उन अध्यापकने आँखें तरेरते हुए कहा।

ओरिजिनल कापी देखी गयी, लेकिन वह तो नदारद। अधिकारियोंने कहा कि 'दूसरी कापीके हस्ताक्षरोंको देखकर सत्यासत्यका निर्णय देंगे।' किन्तु दूसरी कापीपर तो हस्ताक्षर ही नहीं थे। द्वेष रखनेवालोंका दाव लग गया। किसीने मामला 'ऐंटी करेप्शन' तक पहुँचा दिया। तहकीकातोंका ताँता शुरू हो गया। वायुकी लहरोंपर सवार खबर एक कोनेसे दूसरे कोनेतक फैल गयी।

अधिकारियोंने प्रधानाध्यापकजीसे 'मेडिकल लीव' की अवधिमें वेतन देनेका जवाब तलब किया तो अध्यापक महोदयने वेतन देनेका प्रमाण माँगा, पक्षी बाज और बहेलियेके बीचमें था।

प्रधानाध्यापकजीने उन अध्यापकको नाना प्रकारसे समझाया—'सोचो……, मैंने तुम्हारे साथ क्या बुराई की। क्या संकटापन्न अवस्थामें तुम्हें वेतन दे देना अपकार करना है? मैं वृद्ध हूँ, ब्राह्मण हूँ, मेरे जीवनभरके इतिहासमें ऐसा कलंकपूर्ण काम नहीं मिलेगा। मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि यह काम तुम्हारा नहीं है। तुम्हारे तो कन्धेपर रखकर बन्दूक चलायी गयी है।' यों कहते हुए उन्होंने अपने सिरकी टोपी उतारकर उसके पैरोंमें डाल दी और स्वयं भी अचेत हो वहीं लुढ़क पड़े। पर पाषाण भी कहीं पिघलते हैं?

'मैं दूध-पीता बच्चा नहीं, सेरभर आटा रोज उदरस्थ करता हूँ। उपदेश अपने पास रखिये और अपनी करनीका फल भोगिये।'

प्रधानाध्यापकजीने तब अपने इष्टदेवका कातर स्मरण किया—'प्रभो! उसे बुद्धि दो, उस बेगुनाहकी ओटमें शिकार खेला जा रहा है।'

तब एक दिन न जाने कैसे वह खोयी हुई ओरिजिनल कापी, जिसमें अध्यापकजीके हस्ताक्षर थे, दफ्तरमें मिल गयी। उच्चाधिकारियोंने प्रधानाध्यापकसे क्षमा माँगी और हितैषियोंने उन्हें प्रतिष्ठापर आघात करनेके अपराधमें अध्यापकपर कानूनी कार्यवाही करनेकी सलाह दी।

'अँधेरी रात तो तारागणको सुन्दर बनाती है। बेटेके साथ बाप भी बहक जाय तो गंगाका जल मीठा कैसे रहेगा?' वे बोले।

एक दिन लोगोंने सुना, उक्त अध्यापक महोदयका मस्तिष्क विकृत हो गया है। सिर मुँड़वा लिया है। पागलों-सा प्रलाप करते हैं। घरके सामानको बाँटते फिरते हैं। बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट भी कर दिया है। प्रधानाध्यापकजीको पता लगा तो तुरन्त वहाँ पहुँचे और सारे बाँटे सामानको पुनः एकत्रित कर तालेमें बन्द किया और अध्यापक महोदयको अपने खर्चसे आगराके मानसिक चिकित्सालयमें प्रवेश कराया। दो-तीन माहके बाद वे महाशय जब वहाँसे स्वस्थ होकर घर पधारे तो अपने पूर्वकर्मोंपर अत्यधिक पश्चात्ताप किया और तत्पश्चात् क्षमा माँगी।

'मेरे ही कर्मोंका प्रतिफल होगा भैया, नहीं तो कोई किसीको न दु:ख देता है न सुख। अपने ही पूर्वकृत कर्म अच्छी-बुरी सृष्टिका निर्माण करते हैं—दूसरा तो कोई निमित्त बनता है।' हलाहल पीकर भी शंकर निरुद्वेग थे।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

—गोपालकृष्ण जिंदल

भगवत्कथासे प्रेतोद्धार

अनेक प्रकारकी विचित्रताओंसे भरा हुआ यह विशाल विश्व उस लीलामय प्रभुका एक इन्द्रजाल ही है। दिन-रात आँखोंके सामने होनेवाली उनकी अद्‌भुत लीलाओंको देखते हुए भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं, उस प्रभुकी सत्ता एवं उसके सनातन विधानोंपर आस्था नहीं होती, विश्वास नहीं होता। फलतः, हम स्वेच्छाचारितावश नीतिपथसे विमुख हो अपना जीवन जन्म-जन्मान्तरके लिये घोर संकटमें डाल लेते हैं। प्रभुकी विचित्र लीलाओंका प्रत्यक्ष अनुभव कर नीचे कुछ पंक्तियाँ पाठकों, विशेषकर उन महानुभावोंके ध्यानाकर्षित करनेके लिये उपस्थित की जाती हैं, जिन्हें प्रभु अथवा उनकी लीलाओंपर कतई विश्वास नहीं होता।

घटना चैत्रसे श्रावणके अन्तर्गतकी है। मेरे परिवारका नियम है कि प्रतिदिन संध्या-समय बच्चे-बूढ़े एक साथ बैठकर प्रार्थना करते हैं। बादमें रामायण, भागवत आदि किसी-न-किसी ग्रन्थकी कथा भी प्रायः होती है, जिसे मेरे पूज्य वृद्ध पिताजी तथा कुछ अन्य श्रद्धालु नर-नारी भी सुना करते हैं। एक दिन प्रार्थना समाप्त होते ही मेरी ग्यारह सालकी बच्ची जोरोंसे रोने लगी। हमलोगोंके बहुत समझानेपर भी चुप नहीं होती थी। मैंने रंजमें उसे बहुत डाँटा। फिर तो वह बिलकुल चुप हो गयी और पूछनेपर कि 'क्यों रो रही थी?' उसने कहा—'कहाँ रोती थी?' फिर उसे रामायण पढ़नेका आदेश देकर (क्योंकि उसे नित्य रामायण ही पढ़ायी जाती थी) मैं कुछ स्वाध्यायमें लग गया।

रामायण पढ़नेके सिलसिलेमें ही कुछ देर बाद वह आकर मेरे पूज्य पिताजीसे रोती बाहर रास्तेकी ओर इशारा कर कहने लगी—'बाबा, देखिये, यह वहाँपर खड़ी औरत मुझे पढ़नेसे मना करती है, उसे मारिये न!' मैं यह सुनकर तुरन्त वहाँ गया। देखा, रास्तेपर कोई औरत कहीं न थी। आश्चर्य हुआ। फिर उसे ले जाकर कमरेमें बैठाया, जहाँ पूज्य पिताजीको रामचरितमानसकी कथा सुना रहा था। यों तो बच्चीको कथा सुननेका शौक नहीं। अगर कभी जबरन बैठाया भी तो वह सो जाती या वहाँसे भाग जाया करती, परंतु आज ऐसी बात नहीं थी। आज वह सावधानीसे पालथी लगा कथा सुन रही थी। मैंने सशंक हो बीचमें ही बच्चीसे (क्योंकि एक बार दो-तीन मास पूर्व रात्रिमें सुप्तावस्थामें ही वह अनायास रोने-चिल्लाने लगी, तो घरवालोंने किसी झाड़-फूँकवालेको बुलाकर दिखाया था) पूछा—'तुम कौन हो?' कहाँ रहती हो? कहाँसे, किसलिये आयी हो?' तो उसने उत्तर दिया—'मैं यहीं पासमें ही रहती हूँ, बहुत दूरसे अभी आयी हूँ, एक जगह कथा सुनने गयी थी, वहाँ अच्छी कथा नहीं हो रही थी। अतः यहाँ सुनने चली आयी।' 'फिर कभी आयेगी?' मेरे प्रश्न करनेपर उसने उत्तर दिया—'एक दिन और आऊँगी।' मैंने कहा—'जब भागवतकी कथा होगी, तब आना।' फिर मैं कथा कहने लगा और समाप्त होनेपर मैंने कहा—'अब कथा समाप्त हो गयी।' तो, 'अब जाऊँगी' वह बोली। मैंने कहा—'जाओ।' बच्ची फुर्तीसे उठकर चल पड़ी। मैंने दो लड़कोंको पीछेसे देखनेको भेजा कि 'वह कहाँ जाती है?' बच्ची राहपर कुछ दूर जा, फिर लौट आयी। मैंने उसके आते ही पूछा—'बच्ची, कहाँ

थी?' 'घरपर सोयी तो थी!'—उसने कहा! अब वह प्रकृतिस्थ थी। धीरे-धीरे ये बातें सबोंको भूल गयीं।

*　　*　　*　　*

दो महीने बाद ज्येष्ठका पुरुषोत्तममास आया। महीनेभरके लिये शामको भागवतकी कथाका आयोजन किया। दो-तीन ही दिन कथारम्भके हुए थे कि प्रार्थनाके बाद बच्चीको एकाएक मूर्च्छा आ गयी। होश आनेपर पूछनेसे पता चला कि वही 'प्रेतात्मा' वादेके मुताबिक भागवतकी कथा सुनने आयी है। महीनेभर कथा चलेगी, यह जानकर नियमितरूपसे वह बच्चीके माध्यमसे (मूर्च्छा लगकर) आने भी लगी। दो ही दिनों बाद यह आश्चर्यजनक खबर घर-घरमें फैल गयी। प्रार्थना समाप्त हुई कि बच्ची बेहोश! फिर क्षणभरमें होश दुरुस्त! और बच्ची शान्त हो कथा सुननेके लिये बैठ जाती। यह तमाशा देखनेके लिये सायंकाल मेरे दरवाजेपर भीड़ लग जाती थी, जो मुझे अखरने लगी। कथा-समाप्तिके बाद दिनोंदिन कुछ समयतक मेरी उसके साथ बातें हुआ करतीं; जिसमें उसका नाम-पता, उसे किस प्रकार यह योनि मिली, रहन-सहन, उसके संगी-साथी, कथा-श्रवणकी लगन आदि बातोंकी जानकारी मिली। मैंने तो तब दाँतों अँगुली काटी, जब उसके द्वारा यह मालूम हुआ कि मेरा सद्यःप्रसूत शिशु और उसकी माँ, जो सात वर्ष पहले ही एक साथ चल बसे थे तथा मेरा ज्येष्ठ पुत्र जो बीस वर्षकी कच्ची उम्रमें ही अपनी नवविवाहिता पत्नीको छोड़ गत वर्ष आश्विनमें अकस्मात् सर्पदंशसे चल बसा था—सब-के-सब साथ-साथ रहते थे। धीरे-धीरे वे सब भी कथामें सम्मिलित होने लगे।

विशेषता यह थी कि उन लोगोंकी सम्मतिसे ही कथाके अतिरिक्त समयमें स्मरणमात्रसे ही उनके आनेपर बच्चीके माध्यमसे घंटों अलग-अलग सबोंसे बातें हुआ करती थीं और जीवित लोगोंकी तरह क्रमशः उनसे मेरी आत्मीयता बढ़ने लगी। लोगोंका हंगामा और बच्चीके शारीरिक कष्टको देख मैंने उन (मृतात्माओं)-से यह अभिलाषा प्रकट की कि कथा सुननेका वे कोई दूसरा उपाय सोचें, जिससे बच्चीको किसी प्रकारका कष्ट न हो और जन-साधारणकी भी भीड़ न लगे। इसपर उनके इच्छानुसार अलग एक आसनका प्रबन्ध रोज किया जाने लगा, जहाँ वे अब बच्चीको बिना मूर्च्छित किये ही आकर कथा सुनने लगीं। हाँ, बच्ची उन्हें साक्षात् देखा करती और बातें भी कर लेती थी।

इस प्रकार लगभग डेढ़ माहतक कथा चलती रही और उन प्रेतात्माओंका नियमितरूपसे कथा-श्रवण भी चलता रहा। कभी-कभी बच्चीके माध्यमसे वे बहुत रोने लगतीं और प्रेतयोनिसे अपने उद्धारके लिये प्रार्थना करतीं। मेरे आश्वासन देनेपर चुप हो जातीं। इस प्रसंगमें काशीके एक सुप्रसिद्ध महात्मासे पत्रद्वारा इनके उद्धारका उपाय पूछा तो उत्तर मिला—

देहि पिण्डं गयां गत्वा विशालामथवा पुनः।

तथा—

विन्ध्यक्षेत्रस्य मातृभ्योऽथवा भक्त्या समर्पय।
जीवितानां व्यसूनां वा विश्वनाथः परा गतिः॥

अन्ततोगत्वा मैंने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि नवरात्रके अवसरपर इन्हें ले जाकर काशी विश्वनाथजीकी शरणमें सौंप

दूँगा। पूछनेपर उनकी सहर्ष स्वीकृति भी मिल गयी। संयोगवश मुझे जरूरी कार्यवश पटनाकी ओर जाना पड़ा, वहाँ चार-पाँच दिन ठहरा। गंगा-स्नान नित्य करता था। मैंने सोचा, शास्त्रोंमें श्राद्ध-तर्पणादिके करनेसे प्रेत-पितरोंकी तृप्ति होनेकी बात लिखी है। इन प्रेतात्माओंके कथनानुसार इन्हें खाने-पीने आदि बातोंमें कष्ट उठाने पड़ते हैं, अतः क्यों न इनके नामसे दो-चार जलांजलि दे दूँ? अतः ३-४ दिनोंतक नित्य उनके नामसे मैंने गंगामें तर्पण किया। बादमें घर लौटनेपर उन लोगोंसे अलग-अलग जिज्ञासा करनेपर पता चला कि इन चार दिनोंमें उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, बल्कि किसी अज्ञात शक्तिके द्वारा एक सुवर्णकी थालीमें नित्य भोजनके लिये मेवे-मिष्ठान्न उन्हें मिलते थे और खा-पी लेनेके बाद थाली जहाँ-की-तहाँ चली जाती थी। इस तरह प्रेतात्माओंसे प्रत्यक्ष सुन और अनुभवकर पारलौकिक विषयोंके सम्बन्धमें शास्त्रीय वचनोंकी सत्यता अक्षरशः प्रमाणित हुई और उनके प्रति मेरी आस्था और भी अधिकाधिक दृढ़ हो गयी।

एक दिन बातचीतके सिलसिलेमें उनमेंसे एकने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'भाईजी! आज देवदूतने कहा है कि 'तुमलोगोंकी यहाँ रहनेकी अवधि पूरी हो रही है। अब दो-चार दिन और कथा-पुराण सुन लो, फिर यहाँसे चल देना है। कुछ एकको तो भादोंके अन्ततक जन्म ले लेना है और कुछ दो वर्ष बाद इस योनिसे मुक्त होंगे; किन्तु यहाँ किसीको रहना न होगा।' यह सुनकर शीघ्र हमने योजना बना उन्हें 'श्रीमद्भागवत-सप्ताह' सुनाना आरम्भ किया। इस अवसरपर कितनी ही नयी बातें देखनेको मिलीं। जैसे अबतक कथामें न सम्मिलित होनेवाले मेरे

विंशतिवर्षीय दिवंगत पुत्रका आना तथा मुझसे एवं पिताजीसे मिलकर बच्चीके माध्यमसे बातें करना, प्राण-त्यागका कारण बताना, जीवनकालकी अन्य आवश्यक बातें, अन्य व्यक्तियोंद्वारा जाँचमें पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर देकर उनके सन्देहको दूरकर उन्हें आश्चर्यमें डाल देना। किसी अन्य प्रेतात्माद्वारा कथाभूमिको मिनटोंमें लीप-पोत देना एवं अपनी एक खास विचित्र भाषाद्वारा बातें करना तथा बिना बुलाये ही घरकी औरतोंसे बातें करना आदि। सबसे बढ़कर मार्केकी बात यह हुई कि इस बीच मेरा सद्यःप्रसूत मृत शिशु, जिसका सातवाँ वर्ष था, अब बच्चीके माध्यमसे आने लगा और विभिन्न प्रकारकी अद्‌भुत बाललीलाएँ करता हुआ प्रायः सदा ही घरमें रहने लगा। प्रायः डेढ़ महीने यह क्रम चला। अब बच्चीका अपना व्यवहार खाने-पीने, रहने-सोने, नहाने-पहनने आदिका ढंग ही बदल गया। बिलकुल मासूम बच्चेकी तरह उसका व्यवहार सबोंके साथ होता। मैं भी उसे 'बच्चा बाबू' कहकर पुकारता, लाड़-प्यार करता, गोद लेता, जो मेरे लिये एक नवीनता थी। मुझमें विचित्र ममत्व आ गया। भागवती कथा ब्रह्माके मोहभंग-प्रसंगमें कृष्णमय अपने बच्चोंके प्रति गोप-गोपियोंकी उत्तरोत्तर बढ़ती प्रीति एवं गुरु सान्दीपनि तथा माता देवकीकी मृत पुत्रोंको पाकर बढ़ते हुए प्रेमकी कथा चरितार्थ होनेकी याद हो आयी।

'बच्चा बाबू' से बहुत-सी अद्‌भुत बातें मालूम हुईं। १०-२० वर्ष पूर्व मृत कितने ही लोगोंका प्रेतयोनिमें अबतक रहनेकी बात एवं उनके जीवनकालकी रहन-सहन, स्वभाव, आचरणका हूबहू प्रतिरूप बताना। भागवत-महाभारतकी कितनी ही रहस्यमयी

कथाएँ सुनाना। श्रीकृष्णके बाँसुरीवादनकी भाव-भंगिमा तोतली बोलीमें गाते हुए प्रस्तुत करना और बाँसुरीकी ताल-मात्राके साथ गाना संगीत मास्टरकी तरह होता था, जिससे मेरी बच्ची तो सर्वथा अनभिज्ञ ही थी। इसके अतिरिक्त इस संक्रमण-कालमें बच्चीकी सारी चेष्टाएँ लड़के-सी होतीं। दौड़ना, खेलना, कूदना, उन्हीं-सा पोशाक पहनना और बाहर दूर-दूर किसीके साथ जाना इत्यादि।

बच्चा बाबूकी यह करामात तो श्रावणतक चली। किन्तु सप्ताहकथा समाप्त होनेपर उन प्रेतात्माओंके आग्रहसे मुझे परिवारके साथ जगज्जननी जानकीके दर्शनार्थ एक दिन सीतामढ़ी जाना पड़ा। वे भी गयीं और वहाँ भी क्रमश: उनका परिचय पाकर तीर्थविधिसे दर्शनादि कर शामको घर वापस आया। आज ही उन आत्माओंको यहाँसे कुछ दिनोंके लिये उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जाना था। रातके नौ बजते ही वे बारी-बारीसे मेरे पास बच्चीके माध्यमसे आ-आकर पैर छू प्रणामकर चलने लगीं। मैंने पूछा—'अभी इतना पहले ही क्यों जा रही हैं?' उन्होंने कहा '११ बजेतक चला जाना है और देवदूत रथ लेकर खड़े हैं, जल्दी चलनेको कह रहे हैं।' फिर वे घरके अन्य व्यक्तियोंसे मिलकर चले गये। 'बच्चा बाबू'से पता चला कि जाते समय वे आत्माएँ हमसे बिछुड़कर बहुत रो रही थीं। इधर मेरा भी हृदय करुणासे भर आया। आँखसे आँसू गिर पड़े। इस अवसरपर मेरा 'बच्चा बाबू' स्व० ज्येष्ठ पुत्र और उसके साथी अपनी प्रेतयोनिकी पत्नीके साथ नहीं गये। कारण, एक तो ज्येष्ठ पुत्र बीमार था, दूसरे उसकी पत्नीके प्रसव भी हुआ था,

जिसमें जन्मोत्सव मनाने मेरी पत्नी भी आयी थी। 'बच्चा बाबू'से तो प्रतिदिनकी बातें मालूम होती ही थीं, पत्नीसे भी वस्तुस्थितिका यथावत् परिचय मिला। अपने स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्रकी पत्नी और प्रसवकी बात सुन आश्चर्यान्वित होकर अपनी पत्नीसे मालूम हुआ कि दो वर्षोंतक उसे (स्व० पुत्रको) अकेले रहनेमें कष्ट होगा, अतः आग्रहपूर्वक मैंने ही विवाह करवा दिया है। फिर प्रेतयोनिमें सद्यः गर्भ रहता है और एक मासके अन्दर ही प्रसव भी। प्रेतशरीरकी आकृतिके विषयमें पूछनेपर पता चला कि पृष्ठभाग खाली और मुँहका छिद्र सूईके छिद्र-इतना होता है। ईश्वरीय नियमसे बद्ध होनेके कारण चारों ओर अन्न-जलकी प्रचुरता होनेपर भी इच्छानुसार नहीं मिल पाता। गन्दे स्थानोंका जल तथा मारे-मारे फिरनेपर गन्दे स्थानों या दूकानोंमें फैले अन्नोंका रस मिल जाता है जो पर्याप्त नहीं होता। किन्तु जबसे भागवती कथाका इन्हें सुअवसर मिला तबसे सारी असुविधाएँ दूर होती गयीं। मुझे भी उनकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रसन्नताका अनुभव होता रहा। उन्हीं लोगोंसे यह भी विदित हुआ कि ठीक इहलोककी तरह गाँवके २०—२५ हाथ ऊपर अन्तरिक्षमें प्रेतलोक भी है। उनके भी गाँव-नगर बसे हैं। उनमें भी नौकर-चाकर, वैद्य-डॉक्टर, मूर्ख-पण्डित, साधु-वैरागी आदि सभी हैं। जैसा मनुष्यलोकमें होता है; क्योंकि कारणविशेषसे ही तो प्रेतयोनिमें जाते हैं और यह भी अनुभव किया कि अकाल-मृत्युसे या सर्पदंश, अग्निदाह, वृक्षपातादिसे मरनेपर ही लोग प्रेत होते हैं—ऐसी भी बात नहीं। बल्कि समयपर बिना किसी विघ्न-बाधाके मरने या विधिवत् अन्त्येष्टि-क्रिया करनेपर भी लोग

प्रेतयोनिमें निश्चित अवधितक वास करते हैं। अपने-अपने कर्मानुसार वहाँ भी सुख-दुःखसे जीवन जाता है। जीवनकालमें जो धर्मात्मा, आचारनिष्ठ, विद्वान् होते हैं, प्रेतयोनिमें उनकी वैसी ही स्थिति होती है और भगवान्‌की ओरसे सुख-भोगकी, घर-महल, खान-पान आदिकी सारी सुव्यवस्था यहाँकी अपेक्षा अधिक कर दी जाती है। जो यहाँ कर्महीन, पापात्मा, दुराचारी रहते हैं, वे वहाँ भी भूखे-प्यासे मारे-मारे फिरते हैं। गन्दे-सूने खंडहरों, पेड़की डालियोंपर निवास करते हैं। पशुयोनिके प्रेतोंकी स्थिति धरतीके नीचे या ऊपर ही हड्डीके रूपमें रहती है, जबतक उन्हें रहना है; क्योंकि उनका तो दाह-संस्कार होता नहीं। प्रेतात्माओंने अपनी-अपनी स्थिति एवं घर-द्वार आदिके विषयमें भी पूरा विवरण दिया, जो यहाँ विस्तार-भयसे नहीं दिया जा सकता।

श्रावण (१९६१)-में मैं बीमार पड़ा। महीनों रोग-शय्यापर पड़ा रहा। इस बीच प्रेतात्माएँ बराबर आकर मेरी सेवा अपने निश्चित माध्यमसे कर जाया करतीं। भाद्र कृष्ण अष्टमीसे शुक्ल चतुर्थीके भीतर मेरी दिवंगता पत्नीका मुजफ्फरपुरके 'कोरलहिया' ग्राममें कन्याके रूपमें तथा मेरी एक ग्रामीण बहनका सीतामढ़ीके पास भवदेवपुरमें ब्राह्मणकुल तथा उसकी माताका शूद्रकुलमें कहीं जन्म हो गया। ऐसी सूचना उन्हीं लोगोंसे मिली। जाँच करनेपर कोरलहियाकी बात सत्य निकली। भवदेवपुरकी जाँच न कर सका।

श्रीमद्भागवत-कथाकी महिमा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। इसीके कारण प्रेतात्माओंसे परिचय मिला, उनका उद्धार हुआ तथा

कितनी ही अद्भुत बातोंकी जानकारी हुई। मुझे तो उस अवसरपर बराबर गोकर्ण और धुन्धकारीकी स्मृति आती रहती थी। आश्चर्य यह होता है कि वायवीय शरीर होनेके नाते धुन्धकारी बाहर न बैठ सकनेके कारण बाँसके छिद्रमें बैठता था, पर यहाँ ये लोग बाहर ही बैठा करते थे। इतना जरूर था कि देवयोनि होनेके कारण जमीनसे इनका स्पर्श न होता था।

नियमितरूपसे कथा सुननेवाले प्रेतात्माओंके नाम ये हैं—मेरी पत्नी (रामकुमारी), मेरे पुत्रद्वय (विनयकुमार, विजयकुमार), रामइकबाल (विनयका साथी जिन दोनोंका एक-डेढ़ माहके अंदरसे अभिचार-प्रयोगात्मक सर्पदंशसे मृत्यु हुई), सिकली (रामइकबालकी बहन) और सिकलीकी माँ।

इन लोगोंके द्वारा जिन प्रेतात्माओंके परिचय मिले उनके नाम ये हैं—मेरी माताजी (श्रीराजेश्वरी देवी मृत्यु १९४५ ई०); पूज्य चाचाजी पं० श्रीसरयूप्रसाद शर्मा (मृ० १९४६), बा० जोधीसिंह (मृ० १९५२), जय झा (मृ० १९४८), जयमन्त्र झा 'धुक्कू' (मृ० १९४२), कैलाशनाथ शुक्ल चहोत्तर (रायबरेली) निवासी (मृ० १९४५), मोहनदादा बैगना निवासी, सुभद्रा (विनयकी सहचरी) और जानकी (रामइकबालकी सहचरी)।

पूर्वोक्त प्रेतात्माओंके साथ ही इन लोगोंकी भी प्रेतयोनिकी अवधि पूरी हो गयी, सब-के-सब यहाँसे चले गये। उल्लिखित बातोंके अतिरिक्त भी बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिनका यहाँ समावेश ठीक नहीं जँचता। वैज्ञानिक इसका शोध करें तथा विशेष जानकारीके लिये मुझसे बातें कर सकते हैं। मुझे तो सबका सार इतना ही प्रतीत होता है कि शास्त्रीय वचन कितने

अटल सत्य हैं, भगवत्कथा कितनी महिमामयी शक्तिशालिनी है, जिसके पानेको देवयोनिका प्राणी भी लालायित रहता है। अतः हम मानवदेहधारियोंको कल्याणार्थ अप्रमत्त हो शास्त्रीय सदाचारोंका पालन करते हुए निरन्तर भगवत्कथामृतका पान करना चाहिये।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।

(कठोपनिषद्)

—रामकेदार शर्मा

सच्ची सहानुभूति

हमलोग लाहौर गये थे। उस समय पाकिस्तान नहीं बना था। तीन मित्र तथा उनमेंसे एकको धर्मपत्नी मनोरमा देवी भी हमारे साथ गयी थीं। एक दिन हमलोग अच्छी तरह ऊनी कपड़े पहन-ओढ़कर प्रातःकाल घूमने निकले। जाड़ेका मौसम था, फिर पंजाबका जाड़ा। टहलकर वापस लौट रहे थे कि देखा, सड़कके किनारे एक पेड़के नीचे एक तरुणी स्त्री अपने ३-४ सालके बच्चेको छातीसे चिपकाये बैठी है। बच्चेके बदनपर एक भी कपड़ा नहीं है और वह स्त्री एक फटी-सी मैली साड़ी लपेटे है, उसीसे वह बच्चेको ढकनेकी कोशिश कर रही है। दोनों ठिठुर रहे हैं, उनके बदन काँप रहे हैं। इस दृश्यको देखते ही मनोरमाबाई ठहर गयीं और तुरंत उस बाईके पास जा पहुँचीं। हमलोग भी साथ-साथ गये—यद्यपि हमारे मनमें कोई खास सहानुभूति नहीं थी, वरं हमारे एक साथी मित्रने तो कहा—क्यों वक्त बर्बाद करते हो, दुनियामें सभी तरहके लोग हैं। मनोरमा देवीने उसके पास पहुँचकर स्नेहसे पूछा—'बहन! तुम्हारा घर कहाँ है, तुम्हारे पास कपड़े नहीं हैं?' स्नेहभरी आवाज सुनते ही वह फुफकारकर रो पड़ी, बोली—'घर-कपड़े होते तो यहाँ पेड़के नीचे जाड़ेमें क्यों पड़ी रहती। मेरे पति मैट्रिक पास थे। एक जगह अस्सी रुपये महीनेकी नौकरी करते थे। उन्हें टी०बी० हो गयी। तीन साल बीमार रहकर वे मेरे दुर्भाग्यसे मर गये। उनकी बीमारीमें कपड़े-लत्ते, बरतन सब समाप्त हो गये। मैं और बच्चा—जैसे बैठे हैं, वैसे ही बच रहे। किरायेके मकानमें रहते थे। उसने निकाल दिया! छः-सात महीने हुए, इसी पेड़के नीचे गुजर करती हूँ। दिनमें

बच्चेको लिये मजदूरी कुछ कर लेती हूँ, उसीसे पेटमें डालनेको कुछ मिल जाता है। बीचमें बीमार पड़ गयी थी, बच्चा भी बीमार हो गया। अस्पतालमें गयी, पर वहाँ भी कोई दवा-दारू नहीं मिली। भगवान्के भरोसे यहाँ आकर पड़ गयी। एक दिन एक दयालु सज्जनने आकर कुछ पथ्य तथा दवाका इन्तजाम कर दिया। दोनोंकी तबीयत तो कुछ ठीक हुई। पर अभीतक कमजोरीके मारे मैं मजदूरीपर नहीं जा पायी। कपड़े कहाँसे लाती।'

हमलोगोंके मनमें तो आयी कपड़ा दें, पर देते कहाँसे। इसी बीच कुछ बूँदा-बाँदी शुरू हो गयी थी। हमलोग लाचार थे। पर मनोरमा देवीने अपना कम्बल, जो वे ओढ़े थीं, तुरंत उतारकर उसको ओढ़ा दिया और दूसरी ओर मुँह करके अपना स्वेटर उतारा और उसे देती हुई बोलीं—'बहन! इसे पहन लो और इसीमें बच्चेको लेकर छातीसे चिपका लो। ऊपरसे कम्बल ओढ़ लो, वह सब इतनी जल्दी हो गया कि हमलोग देखते ही रह गये। मनोरमाके पति श्रीकुन्दनलालजीने प्रसन्न होकर कहा—'मेरे भी मनमें तो आयी थी कि कपड़ा दूँ, पर सोचा कहाँसे दूँ। साथ तो लाया नहीं था। कम्बल, स्वेटर तो मेरे शरीरपर भी थे, पर मुझे यह बात याद ही नहीं आयी। तुमने बहुत अच्छा किया।' कम्बल-स्वेटर तो हम सभीके पास थे, पर उनकी तरफ ध्यान गया तो केवल मनोरमाजीका ही, हममें किसीके मनमें यह बात नहीं आयी। वह स्त्री तो कृतज्ञतासे दब गयी। इतना ही बोल सकी। फिर तो आँसुओंकी झड़ी लग गयी। 'तुमने बहन! हमलोगोंको जिंदगी दी है—भगवान् तुमको सदा अनन्त सुख दें।'

—रोशनलाल कपूर

मृत्यु-क्षणमें राम-नाम तथा अन्त मति सो गति

घटना आजसे कुछ वर्ष पूर्वकी है। घटनाका प्रत्यक्ष विवरण सुनानेवाले ठाकुर शिवनाथसिंहजी हैं। ठाकुर साहब आज ५३ वर्षके हैं। वे स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हैं। भगवान्‌की दयासे कई बच्चोंके पिता हैं। वे मध्यप्रदेशके जिला राजगढ़के बागरयाखेड़ी ग्रामके निवासी हैं। उन्होंने अपने जीवनका जो विवरण इन पंक्तियोंके लेखकको सुनाया, वह उनके शब्दोंमें इस प्रकार है—

२३ वर्षकी अवस्थातक मेरा विवाह नहीं हुआ था। मेरे पिताजी मुझे बचपनमें ही छोड़कर चल बसे थे। माताजी अवश्य थीं। जीवनका क्रम बड़ी शान्तिसे चल रहा था। मुझे रामचरितमानसमें बड़ा प्रेम है। मैं इसी अवस्थामें जिला राजगढ़ (मध्यप्रदेश)-के एक ग्राम शैलापानीको गया। वहाँ एक ठाकुर साहब वास करते थे। उनसे मेरा प्रेमभाव था। अचानक वहाँ मुझे ज्वर हो आया। साधारणतया यही समझा गया कि ज्वर शीघ्र उतर जायगा, पर ज्वर बढ़ता ही गया। शरीरका तापक्रम १०२ अंश रहने लगा। उस ग्रामके एक वैद्यजीने बताया कि यह तो मोतीझला है। मैं उसी ज्वर-दशामें अपने घर आ गया। घरपर मेरे दो ज्येष्ठ भ्राता थे। सब मिल-जुलकर ही रहते थे। पर ज्वरकी दशामें मुझे संदेह होने लगा कि ये दोनों भाई मुझे मार डालेंगे। अतएव मैंने उनके द्वारा दिया जानेवाला जल स्वीकार करना बंद कर दिया। मैं सोचने लगा कि जलके माध्यमसे ही मुझे विष दिया जायगा। इतना ही नहीं, मैं उनके हाथसे दवा भी नहीं लेता, इस प्रकार मेरी रुग्णता चलती रही।

मेरा ग्रामवालोंसे तथा समीपस्थ ग्रामवासियोंसे अत्यन्त प्रेमभाव था। एतदर्थ समीपस्थ ग्रामवासी भी रातके समय मुझे देखने आते और काफी राततक मेरे पास बैठे रहते। वे दिनमें तो नहीं आ सकते थे; क्योंकि उन्हें अपनी खेतीका काम देखना होता था। मेरी रुग्णता और उससे मुक्त न होनेका समाचार अनेक ग्रामोंमें फैल गया। सोचा जाने लगा कि ठाकुर साहब थोड़े दिनोंके ही मेहमान हैं।

एक दिन स्वास्थ्यमें विशेष भयंकरता आ गयी और मेरी तबीयत घबराने लगी। मैं समझ गया कि मैं आज रातको अथवा दूसरे दिन सबेरेतक अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दूँगा। रातके ७ बजे अनेक व्यक्ति एकत्र हो गये और मेरी जीवन-रक्षाके सम्बन्धमें विचार-विनिमय करने लगे। जब मैंने उनके मुँहसे सुना कि अमुक डॉक्टरको बुलाया जाना चाहिये, तभी मैंने जोरसे कहा—'क्यों व्यर्थकी बातें करते हो। तुम मरनेवालेको बचा सकते हो? छिः! यदि तुम मुझे शान्तिसे मरने देना चाहते हो तो रामचरितमानसके उत्तरकाण्डका पाठ मुझे सुनाना आरम्भ कर दो।' लोग रामचरितमानसकी पुस्तकें लेने दौड़ने लगे।

अचानक मैं देखता हूँ कि दो यमदूत मेरे सामने मुझसे लगभग १०-१५ गजकी दूरीपर खड़े हैं। मैं ज्वरकी दशामें जमीनपर ही लेटता था और आज भी जमीनपर था। ज्वर वैसा ही था। घबराहट बढ़ती जा रही थी। यमदूतोंको देखते ही मैं चिल्ला उठा 'देखो, ये दो यमदूत खड़े हैं।' ये दोनों यमदूत लगभग २५ वर्षकी अवस्थावाले स्वस्थ युवक-से प्रतीत होते थे। उनका रंग नितान्त काला था । वे नंगे बदन थे। केवल नीचे

एक कच्छा पहने हुए थे। कच्छेके नीचेके भागमें एक लंगोटी-सी थी। उनके दाँत बड़े-बड़े और भयंकर थे। वे अपने दोनों हाथोंमें मुद्गरकी भाँतिके डंडे लिये हुए थे। उनकी बड़ी-बड़ी आँखें बहुत डरावनी लगती थीं। मैं उनको देखकर काँप गया और मेरे मुखसे 'राम'का नाम उच्चारित होने लगा। मैं चित पड़ा हुआ 'राम'-नाम जपने लगा। तबतक रामचरितमानस ग्रन्थ आ गये और लोग उत्तरकाण्डका पाठ करने लगे। मैंने देखा कि वे यमदूत एक साथ मेरी ओर बढ़ते, पर जैसे ही मैं 'राम' कहता वे उतना ही पीछे हट जाते। इस प्रकार सारी रात मेरा राम-नाम-जप चलता रहा और मानसका पाठ भी। बीच-बीचमें मैं चिल्ला उठता 'मुझे बचाओ! ये यमदूत डंडे लेकर मेरी ओर बढ़े चले आ रहे हैं।' पर लोग कहते 'कहाँ हैं?' मैं कहता—'ये दीवारसे टिके खड़े हैं।' पर लोग उन्हें नहीं देख पाते। कुछने दीवारके सहारे हाथ फेरा, तब वे कमरेकी दीवालपर चढ़ गये। मैं चिल्ला उठा—'वे दीवालपर चढ़ गये हैं।' तात्पर्य यह है कि मुझको छोड़कर और कोई उन्हें नहीं देख सका। सबेरेतक जप करते हुए मुझे थकानके कारण थोड़ी देरके लिये नींद-सी आ गयी। मानसका पाठ करनेवाले व्यक्ति भी अपने-अपने घरोंको चले गये थे। मेरे पास मेरी माता और मेरे दो भाई बैठे रहे। जैसे ही मेरी आँखें झँपीं, मेरा 'राम'-नाम कहना बंद हो गया । बस क्या था, दोनों यमदूत उचककर मेरी छातीपर आ बैठे। मैं अचेत हो गया। वे मुझे विकरालरूपमें दबाने लगे। मुझे अनुभव हुआ कि मेरे प्राण कण्ठतक आ गये हैं। इसी क्षण मैं सोचने लगा कि 'मरनेके बाद मैं तीतर बनूँगा।' जमीनपर तो मैं था ही। आँखें

बन्द थीं ही। मेरी ऐहिकलीला समाप्त हो गयी। मेरे शरीरको ढक दिया गया और अन्तिम संस्कारकी तैयारियाँ आदि होने लगीं। रोना-गाना भी मुझे अचेतनरूपमें सुनायी दे रहा था।

मुझे लगा—'मैं तीतर हो गया हूँ। उड़कर मैं जंगलमें अन्य तीतरोंके साथ जा बैठा। उसी समय साँसी नामकी जातिके लोगोंने (जो बहुधा डाका डाला करते हैं) मुझे अन्य तीतरोंके साथ पकड़ लिया। उनके साथ एक बुढ़िया भी थी। मैं बुढ़ियाकी रस्सीमें बँधा था। इसी समय अचानक उन साँसियोंको पकड़नेके लिये पुलिस आ गयी। साँसी रस्सीमें बँधे तीतर लेकर भाग खड़े हुए। बुढ़िया भी जंगलकी ओर भागकर एक झाड़ीमें जा छिपी। पुलिसका लक्ष्य पुरुषोंको पकड़नेका था। अतएव बुढ़ियाकी ओर कम ही ध्यान दिया गया। जब पुलिसके सिपाही चले गये तब बुढ़ियाने अपनी क्षुधा शान्त करनेके लिये तीतरोंकी ओर आँख दौड़ायी। रस्सीके ऊपरी भागपर मैं ही था। इसलिये मैं ही क्षुधा-तृप्ति-साधन बननेके लिये रस्सीसे निकाल लिया गया। बुढ़ियाने लकड़ियोंसे अग्नि प्रज्वलित की। फिर उसने मेरे शरीरके पंख नोचे और मुझे जलती आगमें भून डाला। मेरी वह जीवन-लीला भी समाप्त हो गयी। अब मुझे लगा कि मैं घरकी ओर भागता आ रहा हूँ और मैं अपने घरमें कम्बलसे ढँके हुए शरीरमें जा पहुँचा। यह सारा कार्य मेरे मरनेसे लेकर आध घंटेमें ही हो गया। मेरे घरपर मेरी अर्थी तैयार की जा रही थी। मैं अर्थीपर कसा जानेवाला ही था कि मेरे मुखसे निकला—'राम'। मेरे भाई चिल्ला पड़े—'भैयाको देखो'! वे अभी 'राम' कह रहे थे। लोग एकत्र हो गये। कम्बल हटाया गया। मैं आँखें खोले

पड़ा था। मैं रामका नाम अधिक उच्च स्वरसे जपने लगा। लोगोंने कहा—'भैया अभी कहाँ चले गये थे?' मैंने कुछ भी नहीं बताया और केवल यह कह दिया कि बादमें बतायेंगे। लोगोंने मेरे शरीरपर हाथ रखकर देखा कि मेरा ज्वर बिलकुल उतर गया है। मैं पूर्ण स्वस्थताका अनुभव कर रहा था।

कुछ दिनों बाद मैंने अपने सम्बन्धियों और मित्रोंको यह घटना सुनायी और यही कहा—'**अन्त मति सो गति।**' मैंने यह भी अनुभव किया कि 'राम'-नाम-जपके प्रभावसे यमदूत भी पास नहीं फटकते।

उस घटनाके बादसे मेरा नाम-जप बढ़ता ही गया और आज ५३ वर्षकी अवस्थापर मैं पूर्ण स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हूँ। पर भगवान्‌के प्रति मेरा विश्वास बढ़ता ही जा रहा है।

—भगवानदास झा 'विमल'
(एम्० ए०, बी० एस्-सी, एल्० टी०, साहित्यरत्न)

हनुमान्‌जीकी कृपा

घटना अक्षय नवमीकी है। सीतामऊ (म० प्र०)-में मगन तेलीका लड़का मोहनलाल, जिसकी आयु लगभग २४-२५ वर्षकी है, लम्बे समयसे बीमार था। उसे पहले मोतीझरा ज्वर हुआ था। उसके पश्चात् दिनोंदिन उसकी स्थिति बिगड़ती चली गयी। सारे उपचार तथा प्रयत्न निरर्थक सिद्ध हुए। वह आठ-नौ महीनेसे पागलोंकी-सी चेष्टा करने लगा था और उसकी वाणी तो बिलकुल ही बंद हो गयी थी। ऐसी स्थितिमें भी वह प्रतिदिन गाँवके बाहर शौचादि कार्यसे निवृत्त होनेके लिये दिन चढ़नेपर जाया करता था; किंतु अक्षय नवमीके दिन अकस्मात् प्रातः चार बजे उसकी नींद टूट गयी। वह लगभग पाँच बजे घरसे चल दिया। गाँवके बाहर श्रीहनुमान्‌जीके मन्दिरके प्रांगणके बाहर, जहाँ लोहेके तार खिंचे हैं, ज्यों ही वह अन्तिम छोरके एक खम्भेके पास पहुँचा कि उसे लगभग १२-१३ वर्षकी आयुका एक बालक सफेद वस्त्र पहने हुए सामनेकी ओरसे आता दिखायी दिया।

पास आते ही उस बालकने उसे ठहरनेका संकेत करके कहा कि 'तुम घबराना मत।' इसके पश्चात् पृथ्वीकी ओर झुकते हुए किसी वस्तुके उठानेका-सा अभिनय करते हुए 'इसे खा जाओ' यह कहकर उसने उस तेलीकी हथेलीपर मिट्टी-जैसी कोई वस्तु रख दी, जिसे वह खा गया। वस्तु उसे बड़ी स्वादिष्ट और अच्छी लगी।

इसके पश्चात् उस बालकने प्रथम आकाशकी ओर देखते हुए

मोहनका मुख ऊँचा करवाकर उसके गलेपर हाथ फिराते हुए कहा—'बोलो राम।' इतना सुनते ही आश्चर्यकी बात यह हुई कि जिस मोहनकी वाणी आठ-नौ माससे बंद थी, उसके मुखसे सहसा स्पष्ट शब्दोंमें 'राम' शब्द निकल गया। ऐसा उस बालकने तीन बार करवाया और तीनों ही बार तेली युवकके मुखसे 'राम' शब्दका उच्चारण हो गया।

अब उसने मोहनसे कहा—'तुम ऊपर आकाशकी ओर देखो।' ऊपर देखकर ज्यों ही उसने सामने नीचेकी ओर देखा तो उस बालकका पता नहीं। उसने तत्काल इधर-उधर, आस-पास चारों ओर ढूँढ़ा; पर उसका कहीं कोई पता नहीं लगा।

बस, उसी समयसे वह रुग्ण युवक, जो इतने दिनोंसे पागलकी-सी स्थितिमें था और जिसकी वाणी बंद थी, पूर्ण स्वस्थ और सयाना हो गया तथा साफ-साफ बोलने लगा।

जब इस घटनाकी सूचना सीतामऊके महाराजा साहब श्रीमन्त सर रामसिंहजी महोदयको मिली, तब उन्होंने भी इसकी जाँच करवायी और इसे सर्वथा सत्य जानकर बड़ा आश्चर्य और प्रसन्नता प्रकट की।

जनताका अनुमान है कि यह उसकी हनुमान्‌जीकी भक्ति तथा राम-नाम-जपका फल है।

—शितिकण्ठ शास्त्री